वक्तृत्वकला के बीज
चौथा भाग

समन्वय प्रकाशन

प्र० स०
मोतीलाल पारख
ब्रह्मदेवसिंह

प्रकाशक
एस० बी० एण्ड कंपनी
c/o भगवतप्रसाद रणछोडदास
४४, न्यू क्लोथ मार्केट
अहमदाबाद-२



प्रथम आवृति : २०००
वसन्त पंचमी वि० स० २०२८
जनवरी १९७२



मूल्य पाच रुपये पचास पैसे

7 - 00

संपर्क सूत्र
सजय साहित्य सगम,
दासबिल्डिग न०-५
बिलोचपुर, आगरा-२

मुद्रक
रामनारायन मेडतवाल
श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस
राजा की मंडी, आगरा-२

उन जिज्ञासुओ को,
जिनकी उर्वर मनोभूमि मे
ये बीज
अंकुरित
पुष्पित
फलित हो,
अपना विराट् रूप प्राप्त कर सकें !

प्राप्तिकेन्द्र

१ एस० बी० एंड कपनी
c/o भगवतप्रसाद रणछोडदास
४४, न्यूक्लोथ मार्केट
अहमदाबाद–२

२ श्री सम्पतराय बोरड
c/o मदनचद सम्पतराय
४०, धानमंडी,
श्री गगानगर (राजस्थान)

३ मोतीलाल पारख
दि अहमदाबाद लक्ष्मी कॉटनमिल्स कं० लि०
पो० बा० न० ४२
अहमदाबाद–२२

प्राक्कथन

मानव जीवन मे वाचा की उपलब्धि एक बहुत बडी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यों की दृष्टि मे वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठान है, **वाचा सरस्वती भिषग्**[1]—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वय सरस्वती रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचार-रूप रोगो को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावो को एक दूसरे तक पहुँचाने का एक बहुत बडा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती? क्या वह भी मूकपशुओ की तरह भीतर ही भीतर घुटकर समाप्त नही हो जाता? मनुष्य, जो गू गा होता है, वह अपने भावो की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है फिर भी अपना नही आशय कहा समझा पाता है दूसरो को?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुत. एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नही है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण से विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप मे प्रस्तुत करता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय मे ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हे जीवन भर नही भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्महावीर, तथागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के ऐसे महान् प्रवक्ता थे,

---

१ यजुर्वेद १६।१२

जिनकी वाणी का नाद आज भी हजारो-लाखो लोगो के हृदयों को आप्यायित कर रहा है। महाकाल की तूफानी हवाओ मे भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न वुझी है और न वुझेगी।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नही बन सकता। वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है। वक्ता होने के लिए ज्ञान एव अनुभव का आयाम बहुत ही विस्तृत होना चाहिए। विशाल अध्ययन, मनन-चिंतन एव अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एव चिरस्थायी बनाता है। विना अध्ययन एव विषय की व्यापक जानकारी के भाषण केवल भषण (भोंकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे यदि प्रस्तावित विषय पर उसका सक्षम अधिकार नही है, तो वह सभा मे हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है। इसीलिए बहुत प्राचीनयुग मे एक ऋषि ने कहा था—वक्ता शतसहस्रेषु, अर्थात् लाखो मे कोई एक वक्ता होता है।

शतावधानी मुनि श्री धनराज जी जैनजगत के यशस्वी प्रवक्ता हैं। उनका प्रवचन, वस्तुत प्रवचन होता है। श्रोताओ को अपने प्रस्तावित विषय पर केन्द्रित एव मत्र-मुग्ध कर देना उनका सहज कर्म है। और यह उनका वक्तृत्व—एक बहुत बडे व्यापक एव गभीर अध्ययन पर आधारित है। उनका सस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओ का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी! मालूम होता है, उन्होंने पाडित्य को केवल छुआ भर नही है, किंतु समग्रशक्ति के साथ उसे गहराई मे अधिग्रहण किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक 'वक्तृत्वकला के बीज' मे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत कृति मे जैन आगम, बौद्धवाङ्मय, वेदो से लेकर उपनिषद ब्राह्मण, पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कहावतें, न्याय, ऐतिहासिक घटनाएँ, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएँ—

इसप्रकार शृखलावद्ध रूप मे सकलित है कि किसी भी विपय पर हम वहुत कुछ विचार-सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। सचमुच वक्तृत्व-कला के अगणित वीज इसमे सन्निहित हैं। सूक्तियो का तो एक प्रकार से यह रत्नाकर ही है। अग्रेजी साहित्य व अन्य धर्मग्रथो के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसग और स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभापित ही नही है, उनमे विपय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उमपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक वना सकता है। लगता है, जैसे मुनि श्री जी वाड्मय के रूप मे विराट् पुरुप हो गए हैं। जहा पर भी दृष्टि पडती है, कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसगत अपने भापण मे उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओ के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो मकता है—'वक्तृत्वकला के वीज' मे मुनि श्री का अपना क्या है ? यह एक सग्रह है और सग्रह केवल पुरानी निधि होती है, परन्तु मैं कहूंगा - कि फूलो की माला का निर्माता माली जव विभिन्न जाति एव विभिन्न रगो के मोहक पुष्पो की माला वनाता है तो उसमे उसका अपना क्या है ? विखरे फूल, फूल हैं, माली नही। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रग-विरगे फूलो का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप मे सयोजन करना—यही तो मालाकार का कर्म है, जो स्वय मे एक विलक्षण एव विशिष्ट कलाकर्म है। मुनि श्री जी वक्तृत्वकला के वीज मे ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विपयो का उपयुक्त चयन एव तत्सम्वन्धित सूक्तियो आदि का सकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का सकलन अन्यत्र इस रूप मे नही देखा गया।

एक वात और—श्री चन्दनमुनि जी की संस्कृत-प्राकृत रचनाओ ने मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी विद्वत्ता का प्रशमक रहा है। श्री धनमुनि जी उनके वडे भाई हैं—जव यह मुझे

ज्ञात हुआ तो मेरे हर्ष की सीमाओं का और भी अधिक विस्तार हो गया। अब मैं कैसे कहूँ कि इन दोनों मे कौन बडा है और कौन छोटा? अच्छा यही होगा कि एक को दूसरे से उपमित कर दूँ। उनकी बहुश्रुतता एव इनकी सग्रह-कुशलता ने मेरा मन मुग्ध हो गया है।

मैं मुनि श्री जी, और उनकी इस महत्त्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। विभिन्न भागो मे प्रकाशित होने वाली इस विराट् कृति से प्रवचनकार, लेखक एव स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के प्रति ऋणी रहेगे। वे जब भी चाहेगे, वक्तृत्व के बीज मे से उन्हें कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नही रहेगे ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रवक्तृ-समाज—मुनि श्री जी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा।

जैन भवन
आश्विन शुक्ला-३
आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि



४४३४

प्रकाशकीय

वक्तृत्वगुण एक कला है, और वह वहुत वडी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एव परिस्थितियो का ज्ञान तथा इन सवके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणो की साधना एव विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुत. हजारो लाखो मे कोई एकाध ही मिलते है।

तेरापथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी मे वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओ के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओ के मध्य लाखो नर-नारियो ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उसके मधुर प्रभाव को जीवन मे अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनि श्री धनराजजी भी वास्तव मे वक्तृत्वकला के महान गुणो के धनी एक कुशल प्रवक्ता सत है। वे कवि भी है, गायक भी है, और तेरापथ शासन मे सर्वप्रथम अवधानकार भी है, इन सवके साथ-साथ वहुत वडे विद्वान तो है ही। उनके प्रवचन जहा भी होते है, श्रोताओ की अपार भीड उमड़ आती है। आपके विहार करने के वाद भी श्रोता आपको याद करते रहते है।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करे और उसका सदुपयोग करे, अत. जन-समाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विभिन्न सामग्रियो का यह विशाल सग्रह प्रस्तुत किया है।

वहुत समय से जनता की, विद्वानो की और वक्तृत्वकला के अभ्यासियो की माँग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जन-हिताय प्रकाशन किया जाय तो बहुत लोगो को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को धारणा प्रारभ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने मे श्री डूगरगढ, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, नरवाना कैथल, हासी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, जमालपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियो एव युवको ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग सौ कापियो व १५०० विपयो मे यह सामग्री सकलित हुई है। हम इस विशाल सग्रह को विभिन्न भागो मे प्रकाशित करने का मकल्प लेकर पाठको के समक्ष प्रस्तुत हुए है।

वक्तृत्वकला के वीज का यह चौथा भाग पाठको की मेवा मे प्रस्तुत है। इसके प्रकाशन का समस्त अर्थभार श्री एस० वी० एड कपनी, अहमदावाद ने वहन किया है। इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके हृदय से आभारी है।

इसके प्रकाशन एव प्रूफ सशोधन आदि मे श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' तथा श्री ब्रह्मदेवसिह जी आदि का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-ज्ञापित करते है। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओ और लेखको के लिए एक इनसाईक्लोपीडिया (विश्वकोश) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा ...

●●

आ त्म नि वे द न

'मनुष्य की प्रकृति का बदलना अत्यन्त कठिन है'—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक साबित हुई। बचपन मे जब मैं कलकत्ता—श्री जैनश्वेताम्बर-तेरापथी-विद्यालय में पढता था, जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्राय प्रति-दिन एक आना मिलता था। प्रकृति मे सग्रह करने की भावना अधिक थी, अत मैं खर्च करके भी उसमे से कुछ न कुछ बचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिब्बी में रखा करता था।

विक्रम सवत् १६७६ मे अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द जी, मैं, छोटी बहन दीपाजी और छोटे भाई चन्दनमल जी) परमकृपालु श्री कालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयो-पैसो का सग्रह छोड दिया, फिर भी सग्रहवृत्ति नही छूट सकी। वह धनसग्रह से हटकर ज्ञानसग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणो मे हम अनेक बालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोष आदि पढ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की बन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-ढाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढने मे अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हे लिख लेता या ससार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त सामग्री का काफी अच्छा सग्रह हो गया। उसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भाषा मे कह दिया करते थे कि "धन्न् तो न्यारा मे जाने की (अलग विहार करने की) तैयारी कर रहा है।" उत्तर मे मैं कहा करता—"क्या आप गारटी दे सकते है कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमे अपने साथ ही रखेंगे ? क्या पता, कल ही अलग विहार करने

सकी है। कही प्राकृत-सस्कृत, पारसी, उर्दू एव अग्रेजी भाषा है तो कही हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पजाबी और वगाली भाषा के प्रयोग है, फिर भी कठिन भाषाओ के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा मे कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ मे भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थो, कवियो, लेखको एव विचारको ने अपने सिद्धान्त निरवद्यभाषा मे व्यक्त किए है तो कई साफ-साफ सावद्यभाषा मे ही वोले हैं। मुझे जिस रूप मे जिसके जो विचार मिले है, उन्हे मैंने उसी रूप मे अंकित किया है, लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निर्वद्य-सिद्धान्तो के साथ है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ मे उच्चस्तरीय विद्वानो के लिए जहाँ जैन-वौद्ध आगमो के गम्भीर पद्य है, वेदो, उपनिषदो के अद्‌भुत मत्र है, स्मृति एव नीति के हृदयग्राही श्लोक है वहाँ सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, हेतु, दृष्टान्त एव छोटी-छोटी कहानियाँ भी है। अत. यह ग्रन्थ नि.सदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ से विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एव हृदयग्राही बना सकेंगे एव अद्‌भुत विचारो का विचित्र चित्रण करके उनमे निखार ला सकेंगे, अस्तु!

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वक्तृत्वकला के वीज' रखा गया है। वक्तृत्वकला की उपज के निमित्त यहाँ केवल वीज इकट्ठे किए गए हैं। वीजो का वपन किसलिए, कैसे, कब और कहा करना—यह वप्ता (वीज वोनेवाला) की भावना एव वुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वप्ता परमात्मपदप्राप्ति रूप फल।

के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रो मे इन बीजो का वपन करेगे। अस्तु।

यहाँ मैं इस बात को भी कहे बिना नही रह सकता कि जिन ग्रन्थो, लेखो, समाचार पत्रो एव व्यक्तियो से इस ग्रन्थ के सकलन मे सहयोग मिला है—वे सभी सहायक रूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगे।

यह ग्रथ कई भागो मे विभक्त है एव उनमे सैकड़ो विषयो का सकलन है। उक्त सग्रह बालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्य श्रीतुलसी को भेंट किया। उन्होने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एव फरमाया कि इसमे छोटी-छोटी कहानियाँ एव घटनाएँ भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाए। आचार्य श्री का आदेश स्वीकार करके इसे सक्षिप्त कहानियाँ तथा घटनाओ से सम्पन्न किया गया।

मुनिश्री चन्दनमलजी, डूगरमलजी, नथमलजी, नगराज जी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक साधु एव साध्वियो ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना। बीदासर-महोत्सव पर कई सतो का यह अनुरोध रहा कि इस सग्रह को अवश्य धरा दिया जाए।

सर्व प्रथम वि० स० २०२३ मे श्री डूँगरगढ के श्रावको ने इसे धारणा शुरू किया। फिर थली, हरियाणा एव पजाब के अनेक ग्रामो-नगरो के उत्साही युवको ने तीन वर्षो के अथक-परिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया।

मुझे दृढविश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एव मनन से अपने बुद्धि-वैभव को क्रमश: बढाते जायेगे—

वि० स० २०२७ मृगसर बदी ४
मगलवार, रामामडी, (पजाब)

—धनमुनि 'प्रथम'

अनुक्रमणिका

११ अनगार, १२ भिक्षु, १३ श्रमण, १४ निर्ग्रन्थ, १५ स्थविर, १६ तापस, १७ फकीर, १८ संत, १९ कतिपय जगत्प्रसिद्ध संत महात्मा, २० साधुओ के गुण, २१ साधु सगति, २२ सतो का सताप, २३ साधुओ की गोचरी, २४ गोचरी के भेद, २५ गोचरी के नियम, २६ साधु का आहार, २७ आहार किसलिए, २८ साधुओ का निवास स्थान, २९ साधुओ के वस्त्र ३० साधुओ के पात्र ३१ साधुओ का विहार, ३२ साधु की भाषा, ३३ साधुओ के लिए कल्प-अकल्प, ३४ साधुओ के सुख, ३५ साधुओ के बारह सभोग और उनका विच्छेद ३६ साधुओ को शिक्षा, ३७ नामधारी साधु, ३८ पापी साधु, ३९ कदर्पादि मे लीन साधुओ की गति।

चार कोष्ठको मे कुल १४१ विषय तथा दस भागो में

लगभग १५०० विषय हैं।

चौथा भाग

वक्तृत्वकला के बीज

पहला कोष्ठक

१ विवेक

१. हेयोपादेयज्ञान विवेक ।
त्यागने योग्य एव ग्रहण करने योग्य वस्तु के ज्ञान को विवेक कहते हैं ।

२. विवेक केवल सत्य मे पाया जाता है । —गेटे

३ उडने की अपेक्षा जब हम झुकते हैं, तब विवेक के अधिक निकट होते हैं । —वर्ड्सवर्थ

४ अपने विवेक को अपना शिक्षक बनाओ ! शब्दो का कर्म से और कर्मो का शब्दो से मेल कराओ । —शेक्सपीयर

५ विवेक के नियमो को सीखकर, जो उन्हे जीवन मे नही उतारता, उसने खेत मे मेहनत करके भी बीज नही डाला । —शेखसादी

६ समझा-समझा एक है, अनसमझा सब एक ।
समझा सो ही जानिए, जाके हृदय विवेक ।। —कबीर

७ ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी । —कथासरित्सागर
ईर्ष्या ही विवेक की शत्रु है ।

८ मदमूढ-बुद्धिषु विवेकिता कुत ! —शिशुपालवध
मद से मोहित बुद्धिवालो मे विवेक कहा !

९. यौवन और सौन्दर्य में विवेक कदाचित् ही होता है । —होमर

२

विवेक-महिमा

१. विवेगे धम्ममाहिए।

विवेक मे धर्म कहा गया है।

२ विवेको मुक्तिसाधनम्।

विवेक मुक्ति का साधन है।

३. विवेको गुरुवत् सर्व, कृत्याकृत्य प्रकाशयेत्।

विवेक गुरु की तरह कृत्य-अकृत्य का मार्ग दिखाता है।

४. निर्वातहृद्-गेहगत. प्रकाशयेत्,

सर्वेप्सित वस्तुविचारदीपक.। —ब्रह्मानन्द

चञ्चलतारूप वायु से रहित हृदयमदिर मे विवेकरूप दीपक समस्त इच्छित वस्तुओ को प्रकाशित करता है।

५. एको हि चक्षुरमलः सहजो विवेक·।

विवेक एक स्वाभाविक निर्मल नेत्र है।

६ कोर्टसी कोस्टस् नथिग एडवाइज एव्रीथिग।

—अंग्रेजी कहावत

विवेक के लिए एक पाई भी नही लगती, किन्तु इससे हरएक चीज खरीदी जा सकती है।

७ न विवेक विना ज्ञानम्।

विवेक के बिना ज्ञान नही होता।

८ अग्नि के अश विना फूंक नही लगती, श्वास के बिना दवा नही लगती और कान आदि के बिना सुनना-देखना आदि कार्य नही होता—ऐसे ही विवेक के विना व्यवहारिक या धार्मिक उन्नति नही होती। खाना, पीना, पहनना, ओढना, सोना, उठना, बैठना, वोलना, चलना, पढना, लिखना, हसना, रोना आदि व्यवहारिक कार्य तथा ज्ञानचर्चा, व्याख्यान, सामायिक, पौषध, गुरुवन्दन, सेवा-भक्ति, तपस्या एव दान, आदि धार्मिककार्य करना, इन सभी कार्यो मे विवेक की जरूरत है। किसी ने कहा भी है—

आलस्य मे पशुता, क्रिया मे जीवन और विवेक मे मनुष्यता है। अविवेकी को उपदेश नही लगता।



३ विवेकी

१ काय परोपकाराय, धारयन्ति विवेकिन ।

—धर्मकल्पद्रुम

विवेकी पुरुष परोपकार के लिए ही शरीर धारण करता है।

२. विवेक दृष्ट्या चरता जनाना,
श्रियो न किंचिद् विपदो न किंचिद् ।

विवेकपूर्वक आचरण करनेवालो के लिए सपत्ति हर्षदायक नही होती और विपत्ति दु खदायक नही होती ।

३ विवेकिनमनुप्राप्ता, गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरा रत्नमाभाति, चामीकरनियोजितम् ॥

—चाणक्यनीति १६।६

सोने मे जडे हुए रत्नो की तरह गुण विवेकी को पाकर अत्यधिक चमकने लगते हैं ।

४ विवेकिना विवेकस्य, फल ह्यौचित्यवर्तनम् ।

—त्रिषष्टिशलाका० ३।१

उचित व्यवहार करना ही विवेकियो के विवेक का फल है ।

४ अविवेक

१ अविवेक परमापदां पदम् । —महाकवि भारवि

अविवेक आपत्तियो का मुख्य स्थान है ।

२ नास्त्यविवेकात् पर प्राणिना शत्रुः ।

—नीतिवाक्यामृत १०।४५

अविवेक से बढकर प्राणियो का कोई शत्रु नही है ।

३ जड जडता के वश पडे, करते क्रिया अनेक ।
क्रिया विक्रिया हो रही, चन्दन विना विवेक ।।

—तात्त्विकत्रिशती

४ धन जोवन अरु ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक ।
ऐ च्यारूं मेला हुवैं, (तो) अनरथ करै अनेक ।।



३ विवेकी

१. काय परोपकाराय, धारयन्ति विवेकिन ।

—धर्मकल्पद्रुम

विवेकी पुरुष परोपकार के लिए ही शरीर धारण करता है ।

२. विवेक दृष्ट्या चरता जनाना,
श्रियो न किंचिद् विपदो न किंचिद् ।

विवेकपूर्वक आचरण करनेवालो के लिए सपत्ति हर्षदायक नही होती और विपत्ति दु खदायक नही होती ।

३ विवेकिनमनुप्राप्ता, गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरा रत्नमाभाति, चामीकरनियोजितम् ॥

—चाणक्यनीति १६।६

सोने मे जडे हुए रत्नो की तरह गुण विवेकी को पाकर अत्यधिक चमकने लगते है ।

४ विवेकिना विवेकस्य, फल ह्यौचित्यवर्तनम् ।

—त्रिषष्टिशलाका० ३।१

उचित व्यवहार करना ही विवेकियो के विवेक का फल है ।

४

अविवेक

१ अविवेक परमापदा पदम्। —महाकवि भारवि

अविवेक आपत्तियो का मुख्य स्थान है।

२ नास्त्यविवेकात् पर प्राणिना शत्रुः।

—नीतिवाक्यामृत १०।४५

अविवेक से वढकर प्राणियो का कोई शत्रु नही है।

३ जड जडता के वश पडे, करते क्रिया अनेक।
क्रिया विक्रिया हो रही, चन्दन विना विवेक॥

—तात्त्विकत्रिशती

४ धन जोवन अरु ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक।
ऐ च्यारू मेला हुवै, (तो) अनरथ करै अनेक॥



५

विवेकहीन

१ विवेकान्धो हि जात्यन्धः । —योगवाशिष्ठ १४।४१

जो पुरुष विवेकान्ध (विवेकरूपी नेत्रों से हीन) है, वह जन्मान्ध है ।

२. शिरः शार्वं स्वर्गात् पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं ।
माहीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ॥
अधो गङ्गा मेय पदमुपगता स्तोकमथवा ।
विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपातः शतमुखः ॥
—भर्तृहरि-नीतिशतक १०

स्वर्ग से च्युत होकर शिवजी के सिर पर, शिवजी के सिर से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर और फिर पृथ्वीतल से समुद्र में गिरती हुई वही गंगा लघुपद को प्राप्त हुई। वास्तव में विवेकभ्रष्ट पुरुषों का पतन सैकडों प्रकार से होता है ।

३ पुंसा विवेकहीनाना, सेवया न धनार्जनम् ।

विवेकहीन पुरुषों की सेवा करने से धन नहीं हुआ करता ।

४. फूटी आंख विवेक की, लखै न सन्त-असन्त ।
जाके संग दस-बीस है, ताको नाम महन्त ॥

★

चिन्तन-मनन

१ आत्मा का अपने साथ बात-चीत करना ही मनन है।

—प्लेटो

२ मनन विचार की परिचारिका है और विचार मनन का भोजन।

—सी० सिमन्स

३ धर्मशास्त्रो का मात्र पाठ करना दूसरो की गाये गिनने के समान है।

—बुद्ध

४ कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगगो।

—उत्तराध्ययन १।१०

यथासमय अध्ययन करके फिर उसके तत्त्व का ध्यान-चिन्तन-मनन करना चाहिए।

५. चिन्तन की तीन भूमिकाएँ—

१ जो सोच नही सकता, वह मूर्ख है।

२ जो सोचना नही चाहता, वह अन्धविश्वासी है।

३ जिसमे सोचने का साहस नही, वह गुलाम है।



७

विचार

१ कोहं कथमयं दोषः, संसाराख्य उपागतः ।
न्यायेनेति परामर्शो, विचार इति कथ्यते ॥

— योगवाशिष्ठ २।५०

मैं कौन हूं ? मेरे में यह संसाररूपी दोष कैसे आया ? शास्त्रिक-न्याय से—ऐसे सोचने को विचार कहा जाता है ।

२. श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ, वाग्बुद्धिश्च विचारणे ।
यः श्रुतं न विचारेत, स कार्यं विन्दते कथम् ॥

कान सुनने के लिए किए गये हैं और वाणी एवं बुद्धि विचारने के लिए। जो मनुष्य सुनी हुई बात पर विचार नहीं करता, उसे कार्यरूप फल कैसे मिल सकता है ।

३ विचाराद् ज्ञायते तत्त्वं, तत्त्वाद्विश्रान्तिरात्मनि ।

— योगवाशिष्ठ २।१४।५३

विचार से तत्त्वज्ञान होता है और उससे आत्मा को विश्राम मिलता है ।

४ बलं बुद्धिश्च तेजश्च, प्रतिपत्तिः क्रियाफलम् ।
फलन्त्येतानि सर्वाणि, विचारेणैव धीमताम् ॥

—योगवाशिष्ठ २

विद्वानों के बल, बुद्धि, तेज, समय के योग्य स्फूर्ति, क्रिया एवं उसके फल—ये सभी कार्य विचार से ही सफल होते हैं ।

५ महान् विचार जब कार्य के रूप मे परिणत होते है तो वे महान् कार्य बन जाते है। —हैजलिट

६ ससार न कुछ भला है, न कुछ बुरा है। हमारे विचार ही उसे भला-बुरा बनाते हैं। —शेक्सपियर

७ आत्मा के विचार पानी है। उसमे गन्दगी मिलना पाप एव सुगन्धि मिलना पुण्य है।

८ मनुष्य वैसा ही बन जाता है, जैसे उसके विचार होते हैं। —बाइबिल

९ विचार जब आचार की देहली मे प्रविष्ट होते हैं, तब सुरक्षित बन जाते हैं। —जीवनसौरभ

१० विचार मर्यादापूर्ण, सहानुभूतिमूलक और परिमित होने से ही समादृत होता है। —हरिऔध

११ हमारे सर्वोत्तम विचार दूसरो की देन हैं। —एमर्सन

१२ वह मुझे सुन्दर उपहार देता है, जो मुझे अपूर्व विचार सुनाता है। —जूवी

१३ जैसे आप महान् विचारवान है, वैसे ही करके दिखाने वा । बने। —शेक्सपियर

१४ सोचना शान्ति से और करना तेजी से। —जवाहरलाल नेहरू

सद्विचार

१ सद्विचार नमक है और आचार भोजन है, सद्विचार सिकोरा है और दानादि क्रियाएँ उसमे तेल-बत्ती है।

२ सद्विचारो की दृढता से शारीरिक विकारो का नाश, सत्कर्म मे प्रेम और दृढ विश्वास होता है।

• सद्विश्वास की दृढता मे मलिनवासनाओ का नाश, क्षमा, दया, धीरज, अनुराग की उत्पत्ति और सन्निद-ध्यास-प्रभुनाम की स्मृति मे दृढ प्रयत्न होता है।

• सन्निदध्यास की दृढता से अशुभकामनाओ का नाश, निष्कामभाव मे वृद्धि, नश्वर-भोगो मे पूर्ण वैराग्य और सत्तत्त्वो का अनुभव होता है।

• सत्तत्त्वानुभव की दृढता से समर्पणबुद्धि, अहभाव का सवनाश होता है और सत्स्थिति की प्राप्ति होती है व स्थूलसंसार का मोह नष्ट होता है।

• सत्स्थिति मे तमाम दुर्मति नष्ट होकर आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप मे लीन हो जाती है। यह अवस्था निर्द्वन्द्व, गुणातीत, अतर्क व अद्वैत कहलाती है।

—एक वैदिक विद्वान

असद्विचार—

३. हमे अपने फोडो-गिल्टियो से छुटकारा पाने की चिन्ता न करके अपने गलत विचारो से पिंड छुड़ाने की परवाह करनी चाहिए। —दार्शनिक-एपिक्टेट्स

४ खुराक की बदहजमी के लिए तो दवा है, पर विचारो की बदहजमी आत्मा को बिगाड़ देती है। —गांधी

५ विचारो की शुद्धि तब हो सकती है, जब वे हवा की तरह उडकर, सबके हृदय लगे, चादनी की तरह सबकी आँखे ठडी करदे। —एकविचारक

विचारो का परिवर्तन—

६ अनुभव, ज्ञान, उन्मेष और वयस् मनुष्य के विचारो को बदलते हैं। —हरिऔध

७. केवल मूर्ख और मृतक दो ही अपने विचारों को नहीं बदल सकते। —लावेल



१० सलाह लेना जरूरी !

१. एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् । —विदुरनीति १।५१

मनुष्य को चाहिए कि अकेला किसी विषय का निश्चय न करे । अर्थात् दूसरे की सलाह लें ।

२ वन स्वालो इज नॉट मेक ए समर । —अंग्रेजी कहावत

अकेला चना भाड नही फोडता ।

३ एक ही एक सो एकला, वे मिल बावन वीर ।
सहु कहै अन्न ऊपर मुदो, पिण न सरै विण नीर ।

४. एक पर एक-ग्यारह । —हिन्दी कहावत

५ पुराने जमाने में पगडी सूंघने का रिवाज था । तत्त्व यह था—कोई सलाह देनेवाला न हो तो पगडी से ही सलाह ले लो अर्थात् काम करने से पहले कुछ समय सोचलो ।

६ सलाह तो अनेक लेते हैं, पर उससे लाभ उठाना तो बुद्धिमान ही जानता है । —साइरस



११ सलाह के विषय में विविध

१ अनायुक्तो मन्त्रकाले न तिष्ठेत् ॥

—नीतिवाक्यामृत १०।३२

कोई भी व्यक्ति मन्त्रणा के समय विना बुलाया हुआ उस स्थान पर न ठहरे ।

२ न तैः सह मन्त्रं कुर्यात्, येषां पक्षीयेष्वपकुर्यात् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।३१

जिसने जिनके बन्धु आदि कुटुम्बियों का अपकार-अनिष्ट (वध-बंधनादि) किया है, उसे उन विरोधियों के साथ गुप्तसलाह नहीं करनी चाहिए ।

३. आकाशे प्रतिशब्दवति चाश्रये मन्त्रं न कुर्यात् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।२६

जो स्थान चारों तरफ से खुला हो, ऐसे स्थान पर तथा पर्वत व गुफा आदि में जहाँ प्रतिध्वनि निकलती हो, वहाँ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए ।

४ दिवा नक्तं वाऽपरीक्ष्य मन्त्रयमाणस्याभिमतः प्रच्छन्नो वा भिनत्ति मन्त्रम् । —नीतिवाक्यामृत १०।२८

जो व्यक्ति दिन या रात्रि में योग्य स्थान की परीक्षा किए बिना ही मन्त्रणा करता है, उसका गुप्तमन्त्र प्रकाशित हो जाता है ।

१० सलाह लेना जरूरी !

१. एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् । —बिदुरनीति १।५१
मनुष्य को चाहिए कि अकेला किसी विषय का निश्चय न करे। अर्थात् दूसरे की सलाह लें।

२ वन स्वालो डज नॉट मेक ए समर। —अंग्रेजी कहावत
अकेला चना भाड नही फोडता !

३ एक ही एक सो एकला, वे मिल बावन वीर।
सहु कहै अन्न ऊपर मुदो, पिण न सरै विण नीर !

४. एक पर एक-ग्यारह। —हिन्दी कहावत

५ पुराने जमाने मे पगड़ी सूंघने का रिवाज था। तत्त्व यह था—कोई सलाह देनेवाला न हो तो पगडी से ही सलाह ले लो अर्थात् काम करने से पहले कुछ समय सोचलो।

६ सलाह तो अनेक लेते हैं, पर उससे लाभ उठाना तो बुद्धिमान ही जानता है। —साइरस

★

११ सलाह के विषय में विविध

१ अनायुक्तो मन्त्रकाले न तिष्ठेत् ॥

—नीतिवाक्यामृत १०।३२

कोई भी व्यक्ति मन्त्रणा के समय विना बुलाया हुआ उस स्थान पर न ठहरे।

२ न तैः सह मन्त्रं कुर्यात्, येषां पक्षीयेष्वपकुर्यात्।

—नीतिवाक्यामृत १०।३१

जिसने जिनके बन्धु आदि कुटुम्बियो का अपकार-अनिष्ट (वध-बंधनादि) किया है, उसे उन विरोधियो के साथ गुप्तसलाह नही करनी चाहिए।

३. आकाशे प्रतिशब्दवति चाश्रये मन्त्रं न कुर्यात्।

—नीतिवाक्यामृत १०।२६

जो स्थान चारों तरफ से खुला हो, ऐसे स्थान पर तथा पर्वत व गुफा आदि मे जहाँ प्रतिध्वनि निकलती हो, वहा मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए।

४ दिवा नक्तं वाऽपरीक्ष्य मन्त्रयमाणस्याभिमतः प्रच्छन्नो वा भिनत्ति मन्त्रम्। —नीतिवाक्यामृत १०।२९

जो व्यक्ति दिन या रात्रि मे योग्य स्थान की परीक्षा किए बिना ही मन्त्रणा करता है, उसका गुप्तमन्त्र प्रकाशित हो जाता है।

५. इंगितमाकारो मद प्रमादो निद्रा च मन्त्रभेदकारणानि ।
—नीतिवाक्यामृत १०।३५

गुप्तमन्त्र का भेद निम्नप्रकार पाच बातों से होता है, अतएव उनमें सदा सावधान रहना चाहिए यथा—(१) इंगित (गुप्त-मन्त्रणा करनेवाले की मुखचेष्टा), (२) शरीर की सौम्य या रौद्र आकृति (३) शराब पीना, (४) प्रमाद (असावधानियाँ करना) (५) निद्रा ।

६. षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्ण स्थिरो भवेत ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षट्कर्ण वर्जयेत् सुधी. ॥
—पञ्चतन्त्र १।१०८

'छ कान्नी' (तीन व्यक्तियों के सन्मुख की हुई) बात फूट जाती है किंतु 'चौकन्नी' गुप्त रह सकती है । अत. बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे तीन व्यक्तियों के सामने कोई गुप्तमन्त्रणा न करे !

७. दो व्यक्ति सलाह करते हों तो तीसरे को वहाँ बिना बुलायें नहीं जाना चाहिए ।

• राजा भोज एक दिन अचानक महल मे चला गया । रानी उस समय दासी से बात कर रही थी । राजा को आता देखकर वह बोली—आओ मूर्ख ! राजा क्रुद्ध एव विस्मित होकर लौट पड़ा । दरवाजे में पण्डित आते गए और राजा उन्हें कहता गया—"आओ मूर्ख ! आओ मूर्ख !" अन्त मे कालिदास ने निम्नलिखित श्लोक कह कर राजा का समाधान किया ।

खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे,
गत न शोचामि कृत न मन्ये ।
द्वाभ्या तृतीयो न भवामि राजन् !
किं कारण भोज ! भवामि मूर्ख. ॥

—भोजप्रबन्ध

(१) मैं खाता हुआ चलता नही, (२) बोलते समय हसता नही, (३) गई बात को सोचता नही, (४) किए उपकार को स्मरता नही, (५) दो व्यक्तियो की बात के बीच मे जाता नही, फिर हे राजा भोज ! मैं मूर्ख कैसे हुआ ? मूर्ख बनने के तो ये ही पाच कारण हैं । वास्तविकता को समझकर राजा प्रसन्न हुआ ।



१२ उपदेश

१. जो उपदेश आत्मा से निकलता है, वही आत्मा पर सबसे ज्यादा कारगर होता है। —फुलर

२ वह उपदेश उत्तम नहीं, जिसे सुनकर श्रोता लोग बातें एव वक्ता की तारीफ करते जाए, बल्कि उत्तम तो वह है, जिसे सुनकर विचारपूर्ण एव गभीर होकर जाएँ, तथा एकान्तवास की तलाश करें। —बिशप बर्नेट

३. मेरे उपदेशो मे खास बात यह है कि मैं सख्त दिल को तोडता हू, और टूटे हुए को जोडता हू। —जॉनन्यूटन

४. मुझे वह उपदेश पसन्द है, जो मेरे लिए बोलता है, न कि अपने लिए। जिसे मेरी मुक्ति वाछनीय है, न कि अपनी थोथी शान। —मॅसीलन

५ किसी उपदेशक के दोषो पर प्रायः जल्दी ही ध्यान आकर्षित होता है। —लूथर

६ कोई अच्छा उपदेश दे, उसका मानो! लेकिन वह क्या करता है, उसे मत देखो! जैसे हलवाई की मिठाई लेते है, किन्तु यह नही देखते की हलवाई खाता है या नही।

उपदेशदान—

७ उपदेश पापियो और धर्मियो—दोनो को देना चाहिए।

पापियो को इसलिए कि वे पाप से निवृत्त हो, और धर्मियो को इसलिए कि वे धर्म मे सदा सुदृढ रहे।

—आचार्य श्रीतुलसी

८. नीति का उपदेश दो तो सक्षेप मे दो। —हारेस

९ आधा घटा से ज्यादा उपदेश देने के लिए आदमी या तो खुद फरिश्ता हो या सुनने के लिए फरिश्ता रखे।

—ह्वाइट फील्ड

१०. हजार टन उपदेश देने की अपेक्षा एक औस पालन करना श्रेष्ठ है। —विवेकानन्द

११ हम उपदेश देते हैं टन भर, सुनते हैं मन भर, और ग्रहण करते है कण भर। —अलजर

१२ जैसा हम कहते हैं, वैसा करना चाहिए, जैसा करते है, वैसा नही। —वॉस्केशियो

१३ परोपदेशे पाडित्य से ही दरिद्रता आती है। —रामतीर्थ

१४. एक पढे-लिखे बाबू नाव द्वारा नदी पार कर रहे थे। उन्होने नाविक से पूछा—

क्या तुम व्याकरण जानते हो?

नाविक—नही।

बाबू—तुम्हारी चार आने जिन्दगी निकम्मी है।

थोडी देर बाद—क्या तुम्हे काव्य करना आता है?

नाविक—नही।

बाबू—फिर तो तुम्हारी जिन्दगी आठ आने बेकार हो गई।

अच्छा तो—तुम्हे गणित आता है ?

नाविक—नही।

बाबू—तब तो तुम्हारी बारह आने जिन्दगी व्यर्थ ही है।

सयोग से नदी मे तूफान उठा और नाव डगमगाने लगी।

नाविक ने पूछा—बाबू जी! आप तैरना जानते है ?

बाबू—नही।

नाविक ने कहा—फिर तो आपकी जिन्दगी इस समय सोलह आने पानी मे है!

अन्ततः तूफान की चपेट मे बाबूजी को अपने जीवन से हाथ धोना पडा।



१३ कला

१ कला वही है जो सौन्दर्य का सबक सिखाती है।

२ कला विचार को मूर्तिमान् करती है। —एमर्सन

३ सच्ची 'कला' ईश्वर का भक्तिमय अनुसरण है।
—ट्राईन एडवर्डस्

४ जो कला आत्मा के दर्शन की शिक्षा नही देती, वह कला कला ही नही है। —गान्धी

५ सर्वोच्च कला हमेशा धर्ममय होती है और महत्तम कलाकार भक्त होता है।

६ कला तो सत्य का केवल शृंगार है। —हरिभाऊ उपाध्याय

७ कला—कला के लिए नही, बल्कि समाज को उन्नत बनाने के लिये है।

८ कला की परिपूर्णता कला को छिपाने मे है।

९ उपयोगी कलाओ की जननी है 'आवश्यकता' और ललित कलाओ की जननी है 'विलासिता'। पहली बुद्धि से उत्पन्न हुई है और दूसरी प्रतिभा से पैदा हुई है।
— शोपेनहोर

१० सत्य की भूमि पर मायासृजन यही है ललितकलाओ का रहस्य। निरा सत्य उनका ध्येय नही हो सकता।

११ लोगो को वश करने की कला दुनिया मे आगे बढ़ने की कुंजी है।

●

(क) लेखनकला—

१. ऋषभ प्रभु ने ब्राह्मी के बाए हाथ पर अपने दाहिने हाथ से अ-आ-इ-ई आदि वर्णमाला के ४४ अक्षर लिखे एव लेखनकला का प्रारंभ किया। ब्राह्मी के हाथ पर लिखने से ब्राह्मीलिपि कहलाई। सुन्दरी के दाहिने हाथ पर अपने बाँये हाथ मे १, २, ३, आदि अक लिखे अत. अको की वामगति हुई, कहा भी है—अङ्कानां वामतो गति.।

२. वम्बई-निवासी अनन्त भट्ट ने एक पोस्टकार्ड मे जवाहर-जीवनचरित्र लिखा। उसमे लगभग २ लाख अक्षर है।[1]

३ जेम्स जाहारी ने १९२९ मे दो मट (अमेरीका का एक सिक्का) की टिकिट पर २० हजार अक्षर लिखे। १९३५ मे एक चावल पर ९००७ अक्षर लिखे। फिर बालो पर उससे भी बारीक अक्षर लिखे। वे चावलो वाले अक्षरो से १/३ सूक्ष्म थे।

---

१ १४ नवम्बर १९५४ (नेहरू जन्म-दिवस) पर प्रधानमंत्री श्रीजवाहरलालजी को यह कार्ड भेंट किया गया।

४ भूतपूर्व **नेममुनि** ने स० २००२ मे ऐनक की सहायता के विना एव लकडी की कलम से चार इ च चौडा और नौ-इ च लम्बा एक पत्र लिखा। उसके दोनो ओर ८० हजार अक्षर थे। उससे भी सूक्ष्मअक्षरो वाले दो पत्र पुन लिखे। उनके एक वर्ग-इ च मे करीव १४०० अक्षर है।

—धनमुनि

५ **आशुलिपिकर्ता** हिन्दी मे प्रति मिनिट २३० शब्द तक लिख सकते है। नई दिल्ली ३० जून केन्द्रीय सचिवालय-हिन्दीपरिषद द्वारा आयोजित हिन्दी-आशुलिपिकर्ताओ की सातवी प्रतियोगिता मे यह प्रमाणित हुआ।

—हिन्दुस्तान २१ जनवरी १९७०

(ख) **वस्त्र बुनने की अद्भुत कला**—

१ ढाके-चन्देरी आदि की, कारीगरी अव है कहा ?
हा ! आज हिन्दुनारियो की, कुशलता सव है कहा ?
थी वह कला या क्या कि,ऐसी सूक्ष्म थी अनमोल थी।
सौ हाथ लम्बे सूत की, वस आध रत्ती तोल थी[1]।
रक्खा नली मे वास की, जो थान कपडे का नया।

---

१ ढाका जिले के सुनारी गाव मे हाथ के कते हुए १७५ हाथ सूत का वजन एक रत्ती था, तथा आध सेर रुई से २५० मील लम्बा सूत बनाया गया था—

—ढाका रेजिडेन्ट, सन् १८४६ से उद्धृत

आश्चर्य ! अबारीसहित हाथी उसीसे ढक गया ।[1]
वे वस्त्र कितने सूक्ष्म थे, करलो कई उनकी तहे ।
शहजादियो के अग, फिर भी झलकते उनमे रहे ।[2]

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती)

२ वस्त्र बुनने की कला से राजा अपने घर पहुचा—

प्रसग—राजकन्या मे मोहित एक राजा ने उसकी माग की, कन्या ने कुछ कला सीखने की शर्त रखी । राजा ने वस्त्र बुनने की कला सीखी एव विवाह हुआ । वक्र-शिक्षित अश्व के कारण एक वार राजा भीषण वन मे पहुचा । भीलो ने वहा उसे कैद कर लिया । इधर मन्त्री खोज कर रहे थे, किन्तु पता न चल सका । बुद्धिमान राजा ने कई रुमाल बुने एव उनमे गुप्तरूप मे अपना नाम लिखा । भील वेचने शहर मे गये । पता पाकर सेनासहित मन्त्री आया और राजा को छुडाकर ले गया ।

(ग) गायन कला—

५. नास्ति नादसमो रसः ।

सगीत के समान कोई रस नही है ।

---

१. ढाके की मलमल १० गज लम्बी एव १ हाथ चौडी होती थी, जिसका वजन ८ तोले ४॥ माशे होता था । बादशाह को एक कारीगर ने बास की नली मे डालकर एक मलमल का थान भेट किया था, जिससे हौदासहित हाथी ढका जा सकता था ।

२. औरगजेब की लडकी ने मलमल की कई तहें करके उस वस्त्र को ओढा फिर भी उसका अग दीखता ही रहा ।

२ कहा जाता है कि फारस मे मिरजा मुहम्मद बीन बजाकर बुलबुलो को सचेत तथा अचेत कर देते थे।

• बैजूबावरा मालकोश राग गाकर हिरणो को आकृष्ट कर लेते थे।

• तानसेन मेघमल्हार गाकर पानी बरसा देते थे एव दीपकराग से दीपक जला देते थे।

३ तानसेन के गुरु स्वामी हरिदासजी ने प्रभुभक्ति मे लीन होकर एक बार ऐसा गीत गाया, जिसे सुनकर शहन्शाह अकबर आनन्दमग्न होकर मूर्च्छित हो गया।

४ मदनमोहन चटर्जी ने तीन वर्ष दो महीने की आयु मे ताल-स्वर सयुक्त सर्वप्रथम गाना गाया एव श्रोता-विस्मित हुए। सात वर्ष की आयु मे वे अच्छे गवैये बन गये।

५ गोगो गायो र गीता रो छेह आयो।

—राजस्थानी कहावत

६ गीत के १८५ अङ्ग—

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा, मूर्च्छनाश्चैकविंशति।
तालास्त्वेकानपञ्चाशत्, तिस्रो मात्रा लयास्त्रय॥
स्थानत्रय यतीना च, षडास्यानि रसा नव।
रागा षट्त्रिंशतिर्भावा-श्चत्वारिंशत्तत स्मृता॥
पञ्चाशीत्यधिक ह्येतद्, गीताङ्गाना शत स्मृतम्।
स्वयमेव पुरा प्रोक्त भरतेन श्रुते: परम्॥

—पञ्चतन्त्र ५।५३-५४-५५

गीत के स्वर सात होते हैं—(१) षड्ज (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यम (५) पंचम (६) धैवत (७) निषध।

ग्राम (स्वर समूह) तीन होते हैं—(१) षड्जग्राम (२) मध्यम-ग्राम (३) निषादग्राम।

स्वर का आरोह—अवरोह-द्वारा सम्यक् प्रकार से मूर्छित हो जाना मूर्छना कहलाती है। उसके २१ भेद हैं। ताल उनचास हैं। मात्राएँ तीन हैं—(१) ह्रस्व (२) दीर्घ (३) प्लुत। लय तीन होते है। (गीत-नृत्य-वाद्य की एकतानता रूप साम्य-भाव का नाम लय है) यति (विराम-स्थान) तीन हैं। आस्य छः हैं। रस शृंगार आदि नौ हैं। राग भैरव, कौशिकी, हिण्डोल, दीपक, श्री, और मेघ आदि ३६ हैं। भाव ४४ है। इस प्रकार नाट्याचार्य भरत ने गीत के १८५ अंग कहे हैं।

७. बाह्यार्थालम्बनो यस्तु, विकारो मानसो भवेत्।
स भावः कथ्यते सद्भि-स्तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः॥

बाह्यवस्तुओं के सहारे से जो मन में विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें भाव कहते हैं। भाव जब उत्कर्ष को प्राप्त कर लेते हैं तो वे रस कहे जाते हैं।

८. रस नौ हैं—(१) वीर, (२) शृङ्गार, (३) अद्भुत (४) रौद्र, (५) व्रीडा, (६) बीभत्स, (७) हास्य, (८) करुण, (९) प्रशान्त।

अनुयोगद्वार गाथा ६३ से ८७, सूत्र १२६

(घ) नृत्य-कला—

• अफ्रीका में आइवरी-कोस्ट की आदिम जाति, लोबी, के नर्तक एक हाथ में एक कटार और दूसरे हाथ में एक खंजर लेकर उन नोकदार हथियारों की नोक पर एक

लडके को सतुलित कर घटो तक विद्युतगति से नाचता रहता है।

- गोलकुडा (भारत) के शासक, अवुलहसन तानाशाह के दरवार मे एक अनोखी नर्तकी थी, तारामती वह प्रति दिन शाह को अपना नृत्य दिखाती थी। लेकिन यह नृत्य वडा अद्भुत होता था। पहाड पर वने शाह के महल से नर्तकी का निवास करीव आधा मील दूर नीचे पडता था। एक मजवूत रस्सा महल से नर्तकी के निवास तक तान दिया जाता था। इस रस्मे पर नाचती हुई तारामती अपने निवास की छत से महल की छत पर पहुच जाती थी। यह क्रम सन् १६७२ मे १-७७, पाँच वर्षों तक चलता रहा।

—विचित्रा, वर्ष ३, अक ४, १९७१

(घ) तैरने की कला—

गत रविवार की साय को सवसे छोटा तैराक साढेचार साल का था, जो एक ऊँचे पत्थर से तेज यमुनाप्रवाह मे छलाग लगाता था। नव वर्ष की एक लडकी नदी के पाट को पार कर गई। चार लडकिया तैरती हुई फूलो के आकार वना रही थी एव नृत्य कर रही थी। एक लडको के हाथ-पैर रस्सी से वाँधकर उसे पानी मे फेंका गया फिर भी वह तैरकर वाहर आ गई। एक लडकी ने खडी तारी दिखाई, वह ऐसी लग रही थी, मानो पानी पर चल रही है। एक उस्ताद ने आधे

दर्जन बच्चो को कधो पर बिठाकर खडी तारी का प्रदर्शन किया। तैराको के उस्ताद ८० वर्षीय पंडित लल्लु भाई का कहना है कि तैरना सब रोगो की अचूक दवा है। —नवभारत टाइम्स १२ अक्टूबर १९६१ से।

छः मास का एक बच्चा नौ मिनट तक बिना किसी और के सहारे पानी मे तैरता रहा। पाच महीने की एक लडकी साढे तीन मिनट तक पानी मे तैरती रही।

—मिलाप १६ नवम्बर ७१

(छ) बाणकला—

१ बडौदा आर्यकन्या-महाविद्यालय की कन्याओ ने राज्यपाल मंगलदास पकवासा के स्वागत मे, सोकर पैरो से तीर चलाए। उन तीरो ने सामने रखी हुई पुष्पमाला लेकर राज्यपाल के गले मे पहना दी।

२ अमरापुर का लक्ष्यवेधी चम्पा वणिक ऊँट पर चढा हुआ परदेश से धन कमाकर आ रहा था। तीन डाकू मिले, धन मागा। उसने कहा—दानरूप मे दे सकता हूं।

डाकू—हो जा लडने को तैयार।

वणिक नीचे उतरा एव दो तीर तोड डाले। (उसके पास कुल पाच तीर थे) पूछने पर बोला—तुम पैदल हो और तीन हो, एक डाकू से अधिक न मारने की प्रतिज्ञा है।

विस्मित डाकू बोले—पक्षी मारकर परीक्षा दे।

वणिक—व्यर्थ हिंसा कौन करे?

यो कहकर अपनी मोतियो की माला एक डाकू के सिर पर रखो, वाण चलाया, वह माला को ले गया, लेकिन सिर के वाल हिले तक नही ।

३ मुहम्मद गोरी ने कारगरनदी के किनारे भीषण युद्ध मे हराकर पृथ्वीराज चौहान को पकड लिया और हथकडी वेडी एव गले मे तोक पहनाकर गजनी मे कैद कर लिया । इतना ही नही उसको दोनो आँखे भी निकलवा दी । पृथ्वीराज के परमसखा चन्द्रकवि भी योगी के रूप मे वहा जा पहुचे । अपने अद्भुत व्यक्तित्व और बुद्धिमत्ता मे वादशाह के प्रीतिपात्र वने । मौका लगाकर अपने स्वामी मे मिले और दु ख-मुख की वाते की ।

वैर का वदला लेने की ठानकर एक दिन वादशाह से कहने लगे—कि पृथ्वीराज जैसे वहादुर नरेश को इस प्रकार दु ख देना आप जैसे वादशाह को शोभा नही देता । उनसे अनेक अद्वितीय - शस्त्रविद्याएं सीखनी चाहिए । वे इतने अद्भुत शब्दवेधी है कि सा-सौ मन के सात तवे तलाऊ पर रखकर ककर मारने के साथ ही उन्हे फोड सकते है । दुर्भाग्यवश गोरी के जँच गई एव एक तरफ तलाक पर सात तवे रखे गये । तथा एक तरफ ऊचे मचान पर वादशाह वैठा । पृथ्वीराज आये, हथकडी-वेडी हटा दी गई । प्रत्यचा चढाते समय कई धनुष टूट गए । आखिर उन्हे उनका मूल धनुष लाकर

दिया गया। तुरन्त प्रत्यचा चढ़ाई एवं धनुष-बाण लेकर तैयार हुए। उस समय चन्द्रकवि ने अपनी भाषा में यह दोहा सुनाया—

चार बांस चोईस गज, अगुल अष्ट प्रमाण।
मार-मार मोटे तवे, मत चूके चौहान।

चौहान सारा मर्म समझ गया। ज्योंही तवों पर कंकर मारे गये और बादशाह ने उत्साह-वर्धक शाबाश शब्द कहा, शब्दवेधी वीर पृथ्वीराज ने उसी शाबाश शब्द के आधार पर इतना जोरदार बाण मारा कि बादशाह मरकर औंधे मुंह गिर पड़ा। रंग में भंग हो गया और हाहाकार मच गया। मुसलमान ज्योंही पृथ्वीराज को मारने दौड़े। चन्द्र-पृथ्वीराज परस्पर एक-दूसरे की तलवार से मर गये।

—राजपूती कथाओं से

(ज) धर्मकला—

१ सव्वा कला धम्मकला जिणाइ।
धर्मकला सब कलाओं को जीतनेवाली है।

२. बावत्तरिकलाकुसला, पण्डियपुरिसा अपण्डिया चेव।
सव्वकलाणं पवरं, धम्मकला जे न जाणंति॥
बहत्तर कलाओं में निपुण पण्डित पुरुष भी यदि सब कलाओं में श्रेष्ठ धर्मकला को नहीं जानते तो वे वास्तव में अपण्डित ही हैं।

(झ) कलाकार—

१ जीवन सब कलाओ मे श्रेष्ठ है। जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही सच्चा कलाकार है। —महात्मा-गाधी

२ कलाकार बनने के लिए शर्त है—मानव मात्र के प्रति प्रेम, न कि कला-प्रेम। —टालस्टाय

३ कलाकार जैसी वस्तुएँ हैं, वैसी नही देखता, अपितु वैसी देखता है, जैसा वह स्वय है। – अल्फेडटानेन्स

४ इस भरतक्षेत्र के आदि कलाकार श्री आदिनाथ भगवान् थे। उन्होने ही पुरुषो की ७२ तथा स्त्रियो की ६४ कलाएँ बतलाई हैं।

(समवायाग ७२ तथा कल्पसूत्र मे कलाओ का वर्णन है)



१५ कविता

१ वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।

—साहित्यदर्पण

रसयुक्त वाक्य को काव्य-कविता कहते है।

२ कविता भावनाओं में मजी हुई बुद्धि है।

—प्रो० विल्सन

३ कविता सर्वोत्तम मनस्वियों के सर्वाधिक आनन्द के क्षणों का रिकार्ड है। —शैली

५ कविता केवल कहने का सुन्दर और प्रभावशाली तरीका है। —मैथ्यु आरनोल्ड

४ कविता थोड़े शब्दों में महान् शक्ति बताती है।

—एमर्सन

६ चउव्विहे कव्वे पण्णत्ते, तं जहा—गज्जे, पज्जे, कत्थे, गेए।

—स्थानांग ४।४।३७९

काव्य चार प्रकार का कहा है—(१) गद्य, (२) पद्य, (३) कथात्मक, (४) गेय—(गाने योग्य)।



१६ कविता का महत्त्व

१. नरत्व दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं लोके, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥

जैसे—मनुष्यजन्म दुर्लभ है, और उसमे विद्याप्राप्ति सुदुर्लभ है—उसी प्रकार कवित्व दुर्लभ है, लेकिन कवित्वशक्ति का मिलना तो बहुत ही दुर्लभ है।

२ कविता सू ससार मे, अमर वणै है नाम,
कवि मरै, पण नही मरै, कवित्राणी अभिराम।

—सावधानी रो समुद्र १८।८

३ का विद्या कविता विना !

कविता के बिना विद्या ने क्या है !

४. कविता का जामा पहनकर सत्य और भी चमक उठता है। —पोप

५. केषां नैषा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय ?

बताओ ! यह कवितारूपी कामिनी किसके लिए कौतुक का कारण नहीं बनती ?

★

१७ अच्छी कविता

१ सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ।

—भर्तृहरि-नीतिशतक २१

यदि श्रेष्ठ कविता है तो फिर राज्य में क्या है ।

२ सरसा सालङ्कारा, सुपदन्यासा सुवर्णमयमूर्तिः ।
आर्या तथैव भार्या, न लभ्यते पुण्यहीनेन ॥

—प्रसंगरत्नावली

सरस, अलङ्कारसहित अर्थात् अच्छे वाक्य को सजानेवाली गुणसहित, अच्छे पदों की रचनावाली एवं अच्छे वर्णों—अक्षरोंवाली ऐसी आर्या (एक प्रकार की पद्यमय कविता) और भार्या पुण्यहीन को नहीं मिलती । भार्या के पक्ष में अलंकार का अर्थ आभूषण है, सुपद का अर्थ अच्छे पग है और सुवर्णमयमूर्ति का अर्थ सोने की-सी पुतली है । (यह द्वयर्थ काव्य है) ।

३. सा कविता सा वनिता, यस्याः श्रवणेन दर्शनेनापि ।
कविहृदयं विड्हृदयं, सरलं तरलं च सत्वरं भवति ॥

वही कविता, कविता है, जिसे सुनने से कवियों का हृदय सरस हो जाये । वही वनिता, वनिता है, जिसको देखते ही मनुष्य का हृदय चंचल हो जाय ।

४ सहज और सीधी हुयें, ऊँचा भाव यथेष्ट ।
रस बरसे मुख बोलता, वाही कविता श्रेष्ठ ।

स्वर पूरा बैठे नहीं, तुक्का मिलण न पाय ॥
भटकै भाव जग्या विना, तो फिर कविता नाय ॥
—सावधानी रो समुद्र १८।२१-२२

५ कूर्पासकेनार्धतिरोहितौ कुचौ,
रम्यौ रमण्या. कविताक्षराणि च ।
अर्ध निगूढानि सुशोभितान्यल,
नात्यन्तगूढानि न वा स्फुटानि ॥

कंचुकी से आधे ढके हुए स्त्री के स्तनवत् कविता के अक्षर भी अर्ध-आच्छादित हो शोभा देते है। अत्यन्त-गूढ अथवा अत्यन्त-स्पष्ट अच्छे नही लगते ।

६ कविता ऐसी चाहिए, ज्यो कासे का थाल ।
तनिक ठेस से अति सरस, ध्वनि गू जे चिरकाल ॥

७. वास्तविक हार्दिकता मे पैदा हुई कविता हमेशा शरीफ और ऊची बनती है । —ऐ ए हाफकिन्स

८ किसी उत्कृष्ट कवि की कविता भी यदि रामनाम मे रहित हो तो नग्न स्त्री की तरह वह शोभा नही देती ।
—रामचरितमानस

९ पुराणमित्येव न साधु सर्व,
न चापि काव्य नवमित्यवद्यम् ।
सन्त परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूढ. परप्रत्ययनेयबुद्धि ॥
—मालविकाग्निमित्र नाटक १।२

पुराना होने से सभी काव्य अच्छा नहीं होता और नया होने मात्र से सदोष नहीं होता । सन्त सत्पुरुष दोनों की परीक्षा

करके अच्छे को स्वीकार करते हैं, किन्तु मूर्ख व्यक्ति दूसरो के विश्वास पर चलता है।

१०. किं कवेस्तस्य काव्येन, किंकाण्डेन धनुष्मता।
परस्य हृदये लग्न, न घूर्णयति यच्छिरः॥
—शार्ङ्गधर

क्या है उस कवि के काव्य मे और क्या हैं उस धनुष्य-बाण मे, जो हृदय मे लगकर दूसरे का सिर न हिला सके।

११ कविता समझनेवालो की अपेक्षा करनेवाले ज्यादा हैं। एक अच्छा पद्य समझने की अपेक्षा एक रद्दी-सा पद्य लिखना आसान है। —मान्टेन

★

१ काव्य करोषि किमु ते सुहृदो न सन्ति,
ये त्वामुदीर्णपवन न निवारयन्ति।
गव्य घृत पिब ! निवातगृह प्रविश्य,
वाताधिका हि पुरुषा कवयो भवन्ति ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार ३९

क्या बहती हुई वायु को रोकनेवाले तेरे कोई मित्र नही है, जो तू कविता करने लगा है। जहा हवा न लगती हो, ऐसे मकान मे घुसकर गाय का घी पाले ! अधिक वायुवाले पुरुष ही कवि होते है।

काव्य मे दोष देखनेवाले व्यक्ति—

२ अतिरमणीये काव्ये, पिशुनो दूषणमन्वेषयति।
अतिरमणीये वपुषि, व्रणमिव मक्षिकानिकर ॥

—इन्दुलेखा ग्रन्थ

जैसे अति सुन्दर शरीर मे भी मक्खिया व्रण-घाव को खोजती है, इसी प्रकार काव्य कितना ही मनोहर क्यो न हो, दुर्जन उसमे दोष देखा करता है।

३ अतिरमणीये काव्ये, पिशुनो दूषणमन्वेषयति।
सुन्दरमणिमयभुवने, पश्यति रन्ध्र पिपीलिका सततम् ॥
जैसे रत्नो के सुन्दर महल मे भी चीटिया छिद्र को देखती

रहती हैं, इसी प्रकार सुन्दर काव्य मे दुष्टव्यक्ति दोष ही देखता है।

४. कर्णामृत काव्यरसं विहाय, दोषेषु यत्नो सुमहान् खलस्य।
अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः, क्रमेलकः कण्टकजालमेव॥
कानो मे अमृततुल्य काव्यरस को न लेकर दुष्टपुरुष दोष देखने का ही महान् प्रयत्न करते हैं। जैसे—केलिवन मे घुसकर भी ऊट काटोवाले वृक्ष की ही खोज करता है।

५. जानाति हि पुनः सम्यक्, कविरेव कवेः श्रमम्।
कविता करने मे कवियो को कितना परिश्रम करना पड़ता है, वह कवि ही जानता है।

कवि

१ हमारी अन्तस्थ भावनाओ को जागृत करने की जिनमे शक्ति हो, वे कवि हैं। —गांधी

२. कवि वे हैं—जो फूलो से महकते विचारो को उतने ही रगीन शब्दो मे लिखते हैं। —श्रीमती क्रूडनर

३ वे कवि हैं—जो प्रेम करते हैं, जो महान् सत्यो की अनुभूति करते हैं और उन्हें कहते हैं। —शेली

४ कवि का सबसे बडा गुण नई-नई बातो का सूझना है। —महावीरप्रसाद द्विवेदी

५. कवि वणाया नहि वणै, सहज-स्वभावी होय।
स्वाभाविकता कवि तणी, अजब चीज जग जोय॥
—सावधानी रो समुद्र १८।१

६ कोई भी अच्छा आदमी हुए बिना अच्छा कवि नही हो, सकता। —बेनजॉन्सन

७ ऐसा कोई भी व्यक्ति आज तक महान् कवि नहीं हुआ, जो कवि होने के साथ-साथ दार्शनिक न हुआ हो। —कोलरिज

८. कवि करोति पद्यानि, लालयत्युत्तमो जन।
तरु प्रसूते पुष्पाणि, मरुद्वहति सौरभम॥
—प्रसगरत्नावली

कवि पद्यों को बनाता है और उत्तम व्यक्ति उन्हें लड़ाता है। जैसे—वृक्ष पुष्पों को उत्पन्न करता है और हवा उनकी सुरभि को फैलाती है।

९. संग्रामेषु भटेन्द्राणां, कवीनां कविमण्डले।
दीप्तिर्वा दीप्तिहानिर्वा, मुहूर्तेनैव जायते॥
भोजप्रबन्ध १५०

सुभटों का संग्राम में और कवियों की कवि-समूह में शोभा या कुशोभा मुहूर्तमात्र में ही हो जाती है।

कवि-प्रशंसा

१ जयन्ति ते सुकृतिनो, रससिद्धा कवीश्वरा:।
नास्ति येषां यश:-काये, जरा-मरणजं भयम्॥

—शार्ङ्गधर १६६ तथा भर्तृहरि-नीतिशतक २४

वे पुण्यशाली एवं रससिद्ध कविराज विश्व में विजयी होते हैं, जिनके यश रूप शरीर को कभी जरा-मरण का भय नहीं है।

२ अपारे काव्यसंसारे, कविरेक: प्रजापति:।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं, तथेदं परिवर्तते॥

—उत्तर-रामचरित उदाहार, पृ० ६

इस अपार काव्य-संसार में कवि एक प्रजापति है। इसे जैसा रुचता है, संसार वैसा ही बन जाता है।

३ कवयो ह्यर्थं विनापीश्वरा:।

कवि लोग धन के बिना भी ईश्वर हैं।

४ सच्चा कवि बहुत कुछ पैगम्बर के समान है।

५ कवि आत्मा का चित्रकार है।

—आइजक डिजराइली

६ रामायण-महाभारत के रचयिता शब्द के चित्रकार नहीं थे, मानव-स्वभाव के चित्रकार थे। —गांधी

७ कवि की अंगुलियों से शब्द चमक उठते हैं। —जोबर्ट

☆

२१ कवियों की प्रकृति

१ वर्तमान का आनन्द लेना, भविष्य के प्रति लापरवाही, समझदार की-सी बातें और बेवकूफ की-सी हरकतें, हर देश मे कवि का यह एक ही स्वरूप है।

—गोल्डस्मिथ

२. चरन धरत चिन्ता करत, चित्त न भावत और।
सुवरण को शोधत फिरै कवि व्यभिचारी चोर॥

३ कवय किं न पश्यन्ति, किं न कुर्वन्ति योषित.।
मद्यपा किं न भाषन्ते, किं न भक्षन्ति वायसा.॥

—चाणक्यनीति १०।४

कवि क्या नही देखते, स्त्रियां क्या नही करती, शराबी क्या नही कहते तथा काक (कौवा) क्या नही खाते ?

★

२२ कवियों की शक्ति

१. कवि की आँख स्वर्ग से भूतल और भूतल से स्वर्ग तक को देख लेती है। —शेक्सपियर

२ जहाँ न पहुचे रवि, वहाँ पहुचे कवि। —हिन्दी कहावत

३ स्तनौ मासग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ।
मुख श्लेष्मागार तदपि च शशाङ्केन तुलितम्॥
स्रवन्मूत्रक्लिन्न करिवरकरस्पर्धि जघन-
महो! निद्य रूप कविजनविशेषैर्गुरु कृतम्॥

—भर्तृहरि-वैराग्यशतक २०

स्त्रियों के स्तन मास की गाठे हैं, उन्हे स्वर्ण-कलश के समान कह दिया। मुख थूक-खखार का घर है, उसे चन्द्रमा तुल्य कह दिया तथा जाघें, जो मूत्र से भीगी रहती हैं, उन्हे हाथी की सूड से भी बढकर बतला दिया। अहो! कविजनो ने ऐसे निदनीय रूप को भी कितना बढा-चढाकर बताया है?

४ लङ्कापते संकुचित यशो यद्,
यत्कीर्ति पात्र रघुराजपुत्र.।
स सर्वमेवादिकवे प्रभावो,
न कोपनीया कवय क्षितीन्द्रै.॥

—बिल्हणकवि

रावण का यश सकुचित रहा और राम सुयश के पात्र बने। यह सारा आदिकवि श्री वाल्मीकि का ही प्रभाव है। अतः राजाओ को चाहिए कि वे कवियो को कभी नाराज न करें।

५. भीमा तू भाठोह, मोटा भाखर मायलो।
कर राखू कठोह, शकर ज्यू सेवा करू॥

६ राणा तू तो राख, मोटा चूल्हा मायली।
कुल उजवालण काख, कासी ज्यू करणो शरा॥

७ घर सूं भूखा नीकल्या, चूक गया सल्ला।
खाटू भाटा नीपजै, अन्न कठै अल्ला॥

—राजस्थानी सोरठे

८. यह काम है केवल कवियो का, पानी मे आग लगा देना।
पत्थर को मोम बना देना और आग में बाग लगा देना॥

—पृथ्वीराज नाटक

२३ कवियों के लिए विचारणीय बातें

१ कविता करणी खेल नहिं, खरो खिलाणो सांप।
भूल कर्‌या मुख पर लगै, आ ज्ञनपट चुपचाप॥
दग्धाक्षर रो राखणो, पूरो-पूरो ख्याल।
रतनचन्दजी नी परैं हुवै अन्यथा हाल[1]॥
नहो करणी ले झ-ह-र-भ-ख, गन्या की शुरुआत।
पण स्तुतिया मे खासकर, नहि राखीजै ख्यात॥

—सावधानी रो समुद्र, १८-४-५-६

---

१. "रतनचन्द नागोर मे रे चेतनिया !"—इस पद्य की रचना के बाद मुनि रतनचन्द जी ने विहार किया एवं जङ्गल में चोरों ने उनके कपड़े छीन लिए। यहां नागोर में अर्थात् नागोर शहर में—यह अर्थ है, लेकिन 'नागो-रमे' अर्थात् नङ्गा होकर रहा है—यह अर्थ भी निकलता है। इस प्रकार अनिष्ट अर्थ निकल सके—ऐसी पद्यरचना से कवि को बचना चाहिए।

☆

निन्दनीय कवि

१ विद्वत्कवयः कवयः, केवलकवयस्तु केवलं कपयः।
कुलजा या सा जाया, केवलजाया तु केवलं माया॥

—प्रसंग-रत्नावली

विद्वान् कवि ही वास्तव में कवि है। नाम के कवि तो कपि अर्थात् बन्दर के तुल्य हैं। कुलीन-पत्नी ही पत्नी है, दूसरी तो केवल मायारूप हैं।

२ गणयन्ति नापशब्दं, न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य।
रसिकत्वेनाकुलिता, वेश्यापतयः कुकवयश्च॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

जो रसिकता में आकुल होकर अपशब्द, वृत्तभङ्ग तथा अर्थक्षय को नहीं गिनते, वे या तो वेश्यापति हैं या कुकवि हैं।

३. कविरनुहरति च्छायां, पदमेकं पादमेकमर्धं वा।
सकलप्रबन्धहर्त्रे, कविताकर्त्रे नमस्तस्मै॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

कवि छाया का हरण करता है, समस्यापूर्ति आदि में एक पद अथवा आधा पद भी ग्रहण कर लेता है, किन्तु वह कवि तो नमस्कार करने के ही योग्य है, जो दूसरों के काव्य में समूचा प्रबन्ध ही उठा लेता है।

४. इनै-विनै रा हर्फ ले, अपणो नाम लगाय ।
जे जग मे बाजै कवि, ते तो चोर कहाय ॥
दूजारा काव्या तणो, नकल करो मत कोय ।
नकल करणवाला कवि, जग मे नकली होय ॥

—सावधानी रो समुद्र १८।३-२२



२४ निन्दनीय कवि

१ विद्वत्कवय कवय., केवलकवयस्तु केवल कपय. ।
कुलजा या सा जाया, केवलजाया तु केवल माया ॥
—प्रसंग-रत्नावली

विद्वान् कवि ही वास्तव में कवि हैं। नाम के कवि तो कपि अर्थात् बन्दर के तुल्य हैं। कुलीन-पत्नी ही पत्नी है, दूसरी तो केवल मायारूप है।

२ गणयन्ति नापशब्द, न वृत्तभङ्ग क्षय न चार्थस्य ।
रसिकत्वेनाकुलिता, वेश्यापतय कुकवयश्च ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

जो रसिकता से आकुल होकर अपशब्द, वृत्तभङ्ग एवं अर्थक्षय को नहीं गिनते, वे या तो वेश्यापति हैं या कुकवि हैं।

३. कविरनुहरति च्छायां, पदमेकं पादमेकमर्धं वा ।
सकलप्रबन्धहर्त्रे, कविताकर्त्रे नमस्तस्मै ॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

कवि छाया का हरण करता है, समस्यापूर्ति आदि में एक पद अथवा आधा पद भी ग्रहण कर लेता है, किन्तु उस कवि को नमस्कार करने के ही योग्य है, जो दूसरों के काव्य से समूचा प्रबन्ध ही उठा लेता है।

४. इनै-विनै रा हर्फ ले, अपणो नाम लगाय ।
जे जग में बाजै कवि, ते तो चोर कहाय ॥
दूजारा काव्या तणी, नकल करो मत कोय ।
नकल करणवाला कवि, जग मे नकली होय ॥

—सावधानी रो समुद्र १८।३-२२



२५ रसिकश्रोताओं के अभाव में कवि

१. इतरपापशतानि यदृच्छया,
वितर तानि सहे चतुरानन!
अरसिकेषु कवित्व - निवेदन,
शिरसि मा लिख! मा लिख! मा लिख!!

हे ब्रह्म भगवन्! दूसरे सैकड़ों पापों की बख्शीश भले ही कर दे, मैं सहन कर लूंगा, लेकिन अरसिकों के आगे कविता सुनाना मेरे भाग्य में कभी मत लिख! कभी मत लिख! कभी मत लिख!!

२. कविराजा! खेती करो, हल स्यु राखो हेत।
गीत जमी में गाड दयो, ऊपर रालो रेत॥

—राजस्थानी दोहा

★

ससार से विरक्त होने के पश्चात् 'कवि गग' को एक बार बादशाह अकबर ने एक समस्या "करो मिलि आस अकब्बर की" की पूर्ति के लिए कहा—कवि गग ने तत्काल उक्त छन्द द्वारा समस्या की पूर्ति कर दी।

एक कु छोड दूजे कु भजे,
        रसना जु कटो उस लब्बर की।
अब के गुनिया दुनिया कु भजे,
        सिर बाधत पोट अटब्बर की॥
कवि गंग तो एक गोविन्द भजे,
        कछु शक न मानत जब्बर की।
जिनको हरि की परतीत नही,
        सो 'करो मिलि आस अकब्बर की'॥१॥

अकब्बर ये अकब्बर! नराहदा नर।
के होजा मेरी स्त्री, के होजा मेरा वर।
एक हाथ मे घोडा, और एक हाथ मे खर।
कहना है सो कह दिया, अब करना है सो कर॥२॥

उक्त छद को सुनते ही बादशाह क्रोधित हो उठा और उसने कवि 'गग' को हाथी से पैरो तले कुचलवाकर

मरवा दिया। कवि के पुत्र को जब यह समाचार सुनाया गया तो उसने निम्नलिखित छन्द रचकर लोगों को चकित कर दिया।

देवन को दरबार भयो जब,
पिंगल छन्द बनाय सुनायो।
काहू सो अर्थ दियो न गयो,
तब नारद ने परसंग बतायो॥
मृत्युलोक मे गंग गुनी इक,
ताहि को नाम सभा मे सुनायो।
चाह भई परमेश्वर के तब,
गंग कु लेन गणेश पठायो ॥३॥

२७ प्राचीन एवं आधुनिक कवि

१ सर्वज्ञकल्पै. कविभि पुरातनै-
न्वीक्षित वस्तु किमस्ति साम्प्रतम् ।
ऐदयुगीनस्तु कुशाग्रधीरपि,
प्रवक्ति यत्तत्सदृश स विस्मय ॥

सर्वज्ञतुल्य पुराने कवियो ने न देखी हो, ऐसी वस्तु आज है ही क्या ? आज के तुच्छ-बुद्धिवाले व्यक्ति यदि उनके समान भी कुछ कह दें, तो वह आश्चर्य है ।

२. सूर सूर तुलसी शशी, उडुगण केशवदास ।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश ॥

३ आधुनिक कवि स्याही में पानी ज्यादा मिलाते हैं ।

२८

महान् कवि

—हेमचन्द्राचार्य

१ अनुसिद्धसेनं कवयः।

कवियों में सर्वश्रेष्ठ सिद्धसेन दिवाकर हैं।

२. कविरमरः कविरचलः, कविरभिनन्दनश्च कालिदासश्च।
अन्ये कवयः कपयः, श्चापलमात्रं परं दधति॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

कवि तो वास्तव में अमर, अचल, अभिनन्दन और कालिदास हैं। दूसरे कवि तो मात्र चपलता धारण करते हैं, अतः बन्दर के समान हैं।

३ कवयति पण्डितराजे, कवयन्त्यन्येऽपि भूरिविद्वांसः।
नृत्यति पिनाकपाणौ, नृत्यन्त्यन्येऽपि भूत वेतालाः॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

जब 'पंडितराज-जगन्नाथ' कविता करते हैं, तब अन्य अनेक विद्वान् भी कविता करते हैं, किन्तु वे ऐसे लगते हैं मानो शंकर के नाचते समय अन्य भूत-वेताल नाच रहे हैं।

२६ विभिन्न भाषाओं के महान् कवि

१ संस्कृत—कालिदास, हिन्दी—तुलसीदास,
उर्दू—ग़ालिब, बंगाली—रवीन्द्रनाथ टैगोर,
अंग्रेजी—शेक्सपियर, फारसी—शेखसादी,
जर्मन—गायथे, ग्रीक—होमर,
इटालियन—दांते, फ्रांसीसी—सुलीप्राद होमे।

२ प्राचीनकाल के प्रमुख हिन्दी कवि—
चन्द्रवरदाई, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, जायसी, केशवदास, विहारी, भूषण आदि।

३ आधुनिक हिन्दी के प्रमुख कवि—
भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र, जयशंकरप्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', बच्चन', नरेन्द्र शर्मा, नीरज आदि।

४ उर्दू के प्रसिद्ध कवि—
ग़ालिब, मीर, इकबाल, [illegible], जोश, फ़िराक आदि।

५ इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध कवि—
[illegible], [illegible], [illegible], विलियम-वर्ड्सवर्थ, [illegible], टेनिसन, शेक्सपियर, [illegible] आदि।

—[illegible], पृ० ६२

कल्पना

१ 'इतिहास' की अपेक्षा 'कल्पना' का स्थान ऊँचा है। तुलसीदासजी ने कहा है—'राम' की अपेक्षा 'नाम' बडा है।
—गांधी

२. कल्पना ज्ञान से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।
—आईन्स्टीन

३. मानवता अपनी कल्पना से ही शासित होती आ रही है।
—नेपोलियन

४. कल्पना आत्मा का नेत्र है। —जुटेंब

५. कवित्व जैसी सुन्दरता न तो अप्सरा मे है, न नन्दनवन के पारिजात में है, न पूर्णिमा के चन्द्र मे है, न प्रातःकाल के दिग्मण्डल मे है और न सध्या के अरुणित आकाश मे है। कवित्व अधकार मे दीपक है, दरिद्र का धन है, भूख मे अन्न है, प्यास मे घन है, अधे की लाठी है, थके की सवारी है, दुःख मे धैर्य है और विरह मे मिलन है। बुरे को भला और भले को बुरा करना इसके लिए मामूली बात है। भाषा-अभाव इसका मुख्य शत्रु था। बाद में भाषा प्रकट हुई। उसने अभाव को भागा। पुण्डरीक गणधर ने भाषा से विवाह किया। द्वादश-अङ्ग बनाए। उनमें से निकला नाना की कल्पा प्रकट

हुई। कवित्व ने उनसे विवाह किया, उसका नाम कल्पना रखा। कवि लोग इसका आदर करने लगे। जिस समय यह पति (कवित्व) के साथ बन-ठनकर निकलती है, बडो-बडो का सिर चक्कर खाने लगता है।

६. जो विना अध्ययन के केवल कल्पना का आश्रय लेता है, उसके पांखें तो है, किन्तु पग नही है। —जुवर्ट

७ अपवित्र कल्पना उतनी ही बुरी है, जितना बुरा अपवित्र कर्म। —विवेकानन्द



३१ कल्पना के उदाहरण

१. पान और कूंपल—

पान पडतो देख नै, हसी जु कूपलियांह।
मो बीती तो बीतसी, धीरी बप्पडियांह।

—अनुयोगद्वार प्रमाणाधिकार के आधार पर

२. कली और फूल—

हंसती हुई कली से फूल ने कहा—कैसे हंस रही हो? कली—फूल जो बनने जा रही हूं। फूल—फूल बनने पर माली तोड लेगा। कली—खैर! मिट्टी में तो मिलना ही है, किन्तु मरने से पहले किसी को सुवासित तो कर दूंगी।

३ द्वार और झरोखा—

मैं बड़ा हूं, मेरा सम्मान है, मेरे द्वारा ही प्रवेश-निर्गम होता है—ऐसे द्वार ने कहा। झरोखा बोला—क्या अभिमान करते हो! बड़े होने पर भी स्वामी को तुम्हारा विश्वास नहीं है। रात पड़ते ही अथवा बाहर जाते ही तुम्हें बन्द कर दिया जाता है, क्योंकि तुम चोर-डाकुओं को भी जाने से नहीं रोकते, मैं स्वामिभक्त और विश्वासी

होने के कारण हरवक्त खुला रहता हू, और स्वामी को धूप-हवा आदि देता हू।

४ सुई से चलनी ने कहा—
तेरे में तो छिद्र है। सुई बोली—मेरे मे सिर्फ एक छिद्र है, तेरे मे तो सारे छिद्र ही छिद्र है, पहले उनको तो देख !

५ टैगोर की कल्पनाएँ—

(क) ऊपर से गिरता हुआ पानी गाता है कि जब मैं स्वतन्त्र हुआ तभी तो मधुर गान कर रहा हू। (ऐसे ही विकार-मुक्त आत्मा आत्मिक सगीत कर सकती है।)

(ख) फूल ने फल से पूछा—तू मेरे से कितना दूर है? फल ने कहा—मैं तेरे दिल मे ही छिपा हू।
(इससे कर्म के पीछे फल निश्चित है—यह समझो!)

(ग) सत्ता ने विश्व से कहा—तू मेरा है। विश्व ने मान लिया किन्तु प्रेम ने सत्ता को कैद करके फिर विश्व से कहा कि मैं तेरा हू। नम्रवाणी सुनकर विश्व ने प्रेम को अपना सम्पूर्ण साम्राज्य सौंप दिया।
(सत्ता [illegible] शरीर को और प्रेम [illegible] दिल को— [illegible] है। [illegible] सत्ता [illegible] प्रेम में [illegible])

६ [illegible]—

(क) [illegible] —क्या

आदमी इयां के करै है? मिनख हँस'र बोल्यो—अरे तू हो के? मनै अधेरै में सूझ्यो हो कोनो!

(ख) वायरै कयो—पीपल रा पानडा, मैं आऊँ जणां ही थांकै हताई हुवै के? पानडा बोल्या-पूठ पाछै बात करणरी म्हारी आदत कोनी!

(ग) तिरियां-मिरियां भरी तलाई रै दूवडी आ'र गलबाथ घालली। लेरां चिड'र बोली—तनै कुण नूती ही? बीच मे ही मीडको टर-टर कर'र बोल्यो—गैली, अपणायत हुवै जका नूतै नै को अडीकै नी!

(घ) मैणवत्ती कयो—डोरा मैं थारैस्यू कत्तो मोह राखूं हूं? सीधी ही कालजै मे ठोड दीन्ही है। डोरो बोल्यो—म्हारी मरवण, जणां ही तिल-तिल बलूं हूं।

(ङ) मिनख कयो—उलझ्योडी जेवडी, मैं तनै सुलझा'र थारो कत्तो उपगार करूं हूं! जेवडी बोली न सिम्टो'र उपगारी है जको म्हारै स्यूं छानूं कोनी। कोई और नै उलझाणै खातर मन्नै सुलझातो हुसी!

(छ) पानडा कयो—डाला म्हे नहीं हूता तो थे कत्ती अपनांगी लागती? फूल कयो—पानडो, म्हे नहीं हूता तो थे कत्ता अटोल्या लागता? फल कयो—फूलां म्हे नहीं हूता तो थांरो जलम ही अकारथ जातो? फल मे छिप'र बैठ्यो बीज मगलां री बात सुण'र बोल्यो—भोलां, मैं नहीं हूंतो तो थे कोई कोनी हूता।

) जगत रो दोष देखतां-देखतां आख अघाईजी ही कोनी। एक दिन एक छोटो सो' क रावलियो आख ने देखण नै आंख मे वडग्यो। आंख रीस स्यू लाल हुगी पण रावलियो क्यां रो डरै हो ? आखर मे आंख रोवण लागगी जद लार छोडी।

त) दही पूछ्यो—झेरणां, रोजीनां मथ-मथ' र म्हारो माजनो विगाड़ो, की थारै ही पल्ले पड़ै है' क नी ? झेरणो बोल्यो—कोड़्यां तो कालजो रात्यू चूटै ही है ओर' न की देल्यो नी !

ट) हँसतो-हँसतो ही फूल अचाणचूको झड़ग्यो, पानडा वेली-ताप कर' र पूछ्यो—आचानडी मौत कुंनै स्यूं आई ? हँस रो' र बोल्यो—कठीनै स्यूं बताऊँ ? को आती रा खोज मँडै न को जाती रा !

(ट) तूतड़ा बोल्या—देख्यो रे छाजला थारो न्याय ! म्हांनै तो फटक' र परै बगा दिया' र आ नागी छोडणियां दगाबाज दाणां नै कालजियै री कोर कर' र राख्या है ? छाज बोल्यो—ओफो, थां नै तो हूं नै कसूर मान' र ही छोड्या है, आं (विसवासघात्या) ताईं तो घाणी' र ऊँखळो त्यार है।

(ठ) काठो बोल्यो—म्हनै काटणे ताईं तो तूं नागी सूई नै [illegible] भागो, पो मिनखानारो तो [illegible] ? मिनख [illegible]—[illegible] कांई दोष ? नागै [illegible] नागै [illegible] रवै। [illegible] देख' र [illegible] [illegible]।

(ड) बाँस कयो—मिनख ! म्हारै फूल लागै न फल फर, मनै किस्यै लालच जडा-मूल स्यूँ काटै है ? मिनख बोल्यो—गुणहीण री थोथी ऊँचाई म्हारै' स्यूँ कोनी देखीजै।

(ढ) कुम्हार काचै घडै ने चाक स्यूं उतार' र न्यावडै री उकलती भोभर मे ल्या नाल्यो। घडो रो' र बोल्यो—विधाता आ काई करी ? कुम्हार हस' र कयो—पणिहारी रै सिर पर इया सीधो ही चढणो चावै हो के ?

(ण) नीमडै रो रुख मतीरै री बेल नै हँस' र कयो—म्हारी टोखी तो आभै नै नावडै है' र तूं धूल पर ही पसर्योडी पडी है ? मतीरै री बेल बोली, पैली थारै फल चाखी देख, पछै म्हारै स्यूँ बात करीजे !

—'गलगचिया' पुस्तक से

१२ कहावतें

१. 'कहावतों' को 'लोकोक्ति एवं किंवदन्ती' भी कहते हैं।

२. हरएक देश में अपनी-अपनी भाषा की कहावतें होती हैं।

३ कहावतों के अन्दर सीधे-सादे शब्दों में गंभीर ज्ञान निहित होता है।

४. कई पुरानी कहावतों के निर्देशों में आज कुछ परिवर्तन भी हुआ है जैसे—(१) दीकरी ने गाय, दोरे त्या जाय। (२) दरजीनो दीकरो जीवे, त्यासुधी सीवे। (३) घोटो वाजे घम-घम, विद्या आवे छम-छम, (४) स्पष्टवक्ता सुखी भवेत्।



२२ साहित्य

१. सहितस्य भावः साहित्यम्। —बाबू गुलाबराय
जो हित के साथ हो अथवा जिसमें हित का सम्पादन हो, उसे साहित्य कहते हैं।

२ विचारों का प्रकाशितरूप ही साहित्य है। प्रकाशन हृदय से, स्पर्श से, मुस्कान से, वाणी से एवं मौन से होता है। —जमनालाल जैन

३ साहित्य दो प्रकार का होता है—सामयिक और शाश्वत।

४ वही काव्य और वही साहित्य चिरजीवी रहेगा, जिसे लोग सुगमता से पाकर पचा सकेंगे। —महात्मा गांधी

५ सात्त्विक-साहित्य का सृजन एवं सरल-भाषा में लिखना बहुत कठिन है। —धनमुनि

६ साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्
तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।
—भर्तृहरि नीतिशतक १२

जो मनुष्य साहित्य एवं संगीत की कला से शून्य है, वह बिना सींग-पूँछ का साक्षात् पशु है। जो घास-फूस खाये बिना ही

जाता है, वह पशुओं का सौभाग्य है अन्यथा उन बेचारों को खाने के लिए तृण कहां से मिलते।

७ अंधकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है,
मुर्दा है वह देश, जहां साहित्य नहीं है।

—मैथिलीशरण गुप्त

८. साहित्यपाथोनिधिरत्नलब्ध्यै,
केषां कवीनां न करप्रसारः।
लभ्येत वा नेति निजस्य भाग्यं,
उद्योगिनो नो जहति प्रयत्नम्॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

साहित्य-रत्नाकर के रत्नों की प्राप्ति के लिए कौन कवि हाथ नहीं पसारते? मिलना न मिलना तो भाग्य की बात है, लेकिन उद्यमी प्रयत्न करना नहीं छोड़ते।

९ इंग्लिश के कुछ प्रसिद्ध साहित्यकार—
शेक्सपियर, मिल्टन, शैले, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, ब्राउनिंग, बर्नार्डशा, कालरिज, थामसहार्डी, चार्ल्स डिकन्स, स्काट, आदि।

—विश्वदर्पण



२. कनकभूषण संग्रहणोचितो,
यदि मणिस्त्रपुणि विनियुज्यते।
न च विरौति न चाप्यवभासते,
भवति योजयितुर्वचनीयता ॥

—हितोपदेश २।७२

सोने के आभूषण में जोड़ने योग्य मणि यदि सीसा आदि धातु के आभूषण में लगाया जाय, तो न वह मधुर ध्वनि करता है और न हि सुशोभित होता है, प्रत्युत संयोजक की निन्दा होती है।

●

३६ लेखक

१ यदि तुम लेखक बनना चाहते हो तो लिखो।

—इपिक्टेटस

२ विचारो अधिक, बोलो अत्यल्प और लिखो उससे भी थोड़ा।

—इटालियन लोकोक्ति

३. फालतू चीज मत लिखो। जिसमें पूरा मन लगे, पूरा रस मिले और पूरी डुबकी आये, वही लिखो! लिखकर सम्पादक की दृष्टि से पढ़ो और कमियाँ सुधार दो! कुछ दिन बाद फिर पढ़ो और नई बातें सूझें, उन्हें उसमें बढ़ादो। पढ़ते समय सूझे की यह कुछ नहीं है, तो उसे तुरत फाड़कर फेंक दो।

४ मन्समजार्ज ने २० पृष्ठ का एक भाषण लिखा। नेर्स टरी उसे पढ़ता गया और जार्ज कम करता गया। शेष पाँच पृष्ठ रहे! जार्ज का यह भाषण सर्वोत्कृष्ट माना गया।

५ जो लेखक व वक्ता अपने भावों को छोटा करना नहीं जानता वह कभी सफल नहीं होता।

—एमर्सन

६ लिखते वे लोग हैं, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, विचार है। जिन्होंने धन, भोग और विलास को लक्ष्य बना लिया, वे क्या लिखेंगे!

—प्रेमचन्द

७. महान् लेखक अपने पाठक का मित्र व शुभचिन्तक होता है। —मेकाले

८ लेखकों की मसी शहीदों के रक्तबिन्दुओं से अधिक पवित्र है। —हजरत मुहम्मद

९ लेखक वे चीजें प्रायः कम ही लिखते हैं, जो वे सोचते हैं। वे केवल वे ही चीजें लिखते हैं, जो दूसरे सोचते हैं या सोचते होंगे। —एल्बर्ट हुबार्ड

१० विश्वविख्यात लेखक होमर और सुकरात बिल्कुल अनपढ़ थे। उनकी सभी रचनाएँ सुनकर अन्य लोगों ने लिखी थीं। —पंबन्द पृष्ठ १६

११ ग्रन्थ को संक्षिप्त करनेवाले अनूठे लेखक—

सुप्रतिष्ठित नगर के राजा जितशत्रु की सभा में चार ऋषि आये (१) अत्रि—आयुर्वेद के ज्ञाता (२) बृहस्पति—नीतिशास्त्र के वेत्ता (३) कपिल—धर्मशास्त्र के विशेषज्ञ (४) पञ्चाल—अध्यात्मज्ञानी।

ये सब अपने अपने विषय के ग्रंथ बनाकर लाये थे। प्रत्येक ग्रंथ में एक-एक लाख श्लोक थे। समया-भाव के कारण राजा ने उन ग्रंथों को छोटे-रूप में बनाने को कहा। ऋषि उन्हें ज्यों-ज्यों संक्षिप्त करते गये, राजा अधिक संक्षिप्त करने की प्रार्थना करता गया। अन्त में वे ग्रंथ चार पदों के रूप में प्रस्तुत किये गये। पद निम्नलिखित थे—

(१) जीर्णे भोजनमात्रेय,

हजम हो जाने के बाद भोजन करना—अत्रि ऋषि ने यह आयुर्वेद का सार कहा।

(२) न्याय्या वृत्तिर्बृहस्पति,

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति न्याययुक्त हो—बृहस्पति ऋषि ने यह नीतिशास्त्र का तत्त्व बतलाया।

(३) कपिल: प्राणिनां रक्षा,

प्राणिमात्र की रक्षा करनी चाहिए—कपिल मुनि ने यह धर्मशास्त्र का निचोड़ सुनाया।

(४) पाञ्चाल: साम्यभावना।

प्राणिमात्र पर समभाव रखना चाहिये—पञ्चाल ऋषि ने यह अध्यात्मवाद का मूल मन्त्र दिखलाया।

(राजा एवं राज्यसभा चरित्र)

१२. इंग्लिश के प्रसिद्ध भारतीय लेखक—

स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, सरोजिनी नायडू, गान्दत्त, जवाहरलाल नेहरू, हरीन्द्रनाथ चटर्जी, अरविन्द घोष, मुल्कराज आनन्द, आर० के० नारायणन्।

— हिन्ददर्पण

१३ बुरे लेखक—

(क) बुरे लेखक वे हैं, जो अपने अनेक विचारों की अभिव्यक्ति दूसरों की बुद्धि के माध्यम से करते हैं।

—जी० सी० लिक्टेनबर्ग

(ख) अपनी पुस्तकों की प्रशंसा करनेवाले लेखक अपने बच्चों की प्रशंसा करनेवाली माता के समान हैं। — डिजरायली



लेखनी

१. लेखनी मस्तिष्क की जिह्वा है। — सर्वेन्टिस

२ दुनिया में दो तरह की ताकतें हैं—तलवार और कलम। आखिर तलवार हमेशा कलम से शिकस्त खाती है। —नेपोलियन

३. रीडिंग मेक्स ए फुल मैन,
स्पीकिंग ए परफेक्ट मैन,
राइटिंग एन एग्जेक्ट मैन॥ — बेकन

अध्ययन मनुष्य को पूर्ण बनाता है, भाषण परिपूर्ण बनाता है और लेखन प्रामाणिक बनाता है।

४. लिखावट को देखकर व्यक्ति का स्वभाव जाना जाता है। —आत्मविकास पृष्ठ २०६

५. विज्ञान के अनुसार लिखते समय शरीर की पाच सौ नसें संयुक्त होती हैं। -- नेपोलियन

६. लेखनी पुस्तिका रामा, परहस्ते गता गता।
कदाचित् पुनरायाति, नष्टा भ्रष्टा च चुम्बिता॥
—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६४

लेखनी-पुस्तक-स्त्री—ये तीनों चीजें, दूसरे के हाथों में जाने के बाद प्रायः चली ही जाती हैं। कदाचित् वापस आती हैं तो नष्ट, भ्रष्ट एवं चुम्बित होकर आती हैं।

१ मस्तिष्क के लिए अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है। शरीर को जितनी व्यायाम की। —जे. एफ एडीसन

२. प्रकृति की अपेक्षा अध्ययन द्वारा अधिक व्यक्ति महान् बने हैं। —सिसरो

३ इब्राहीमलिंकन, बर्नार्डशा व टैगोर ने स्कूल में विशेष शिक्षा नहीं पाई। चार्ल्सडारविन सर विलियम स्काट, व न्यूटन स्कूलों में नवरी भोंदू थे। नेपोलियन अपनी कक्षा के छात्रों में ४२ वें नंबर का था। इन सभी ने पुस्तकों के अध्ययन से ही योग्यता प्राप्त की थी।

४ नेपोलियन व सिकन्दर लड़ाई में भी पुस्तकें पढ़ते रहते थे।

५. अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति रूजवेल्ट ह्वाइटहाउस के आवासकाल में मध्याह्न समय आगंतुकों से पांच-पांच मिनट मिला करते थे। लेकिन पढ़ने के इतने प्रेमी थे कि एक व्यक्ति मिलकर जाता एवं जब तक दूसरा व्यक्ति मिलने के लिए नहीं आता, उस अल्पतम-अन्तरकाल में वे पुस्तक पढ़ने लग जाते। इस प्रकार उन्होंने अनेकानेक पुस्तकें पढ़ डालीं।

६. चीन के अध्येता संचित नींद न आ जाय—अतः अपनी चोटी को एक लम्बी रस्सी द्वारा छत से बाँधकर पढ़ा करते थे। —हिन्दुस्तान, जनवरी ७, १९६८

७. पढ़ने से सस्ता कोई मनोरञ्जन नहीं और न कोई खुशी उतनी स्थायी। —लेडी मॉंटग्यू

८ अध्ययन हमें आनन्द और योग्यता देता है एवं अलंकृत करता है। —फ्रांसिस बेकन

९. मनुष्य को प्रतिदिन पढ़ना चाहिए, पढ़े चाहे पंद्रह मिनिट ही। प्रतिदिन १५ मिनट पढ़ा जाय एवं प्रतिमिनिट ३०० शब्द की रफ्तार से पढ़ा जाय तो प्रतिमास १ लाख ३५ हजार शब्दों की एक पुस्तक (लगभग २२५ पृष्ठ की पढ़ी जा सकती है। —धनमुनि

१०. तेज पढ़िये! इसका अभ्यास करानेवाली अमेरिका में ४०० प्रयोगशालायें हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि साधारण व्यक्ति प्रतिमिनिट २५० शब्द पढ़ ले तो अच्छा ही है, किन्तु ४०० शब्द प्रतिमिनिट पढ़ने से आनन्द आता है। बुद्धिमान को हजार से १८०० तक का अभ्यास करना चाहिए। —आपका व्यक्तित्व, पृष्ठ १६९

११ अध्ययनकाले व्यासङ्ग-दारिद्र्यमन्यमनस्कता च न भजेत्। —नीतिवाक्यामृत ११।१८

विद्याध्ययन के समय शारीरिक व मानसिक चंचलता तथा चित्तवृत्ति को अन्यत्र ले जाना—ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए।

१ सुष्ठु आ-मर्यादया अधीयते इति स्वाध्यायः।

—स्थानांग ५।३।४६५ टीका

सत्शास्त्र को मर्यादासहित पढ़ने का नाम स्वाध्याय है।

२. तपोहि स्वाध्यायः। —तैत्तिरीय आरण्यक २।१४

स्वाध्याय स्वयं एक तप है।

३ सज्झायं कुव्वंतो, पंचेंदियसंवुडो तिगुत्तो य,
हवदि य एगग्गमणो, विणएण समाहिओ भिक्खू।

—मूलाचार ५।२१३

पंचेन्द्रियसंवृत, त्रिगुप्तिगुप्त एवं विनयसमाधियुक्त मुनि स्वाध्याय करता हुआ एकाग्रमन हो जाता है।

४ सज्झायसज्झाणरयस्स ताइणो,
अपावभावस्स तवे रयस्स।
विसुज्झई जंसि मलं पुरेकडं,
समीरियं रुप्पमलं व जोइणा॥

—दशवैकालिक ८।६२

जैसे अग्नि द्वारा तपाये हुए चांदी का मैल दूर हो जाता है, वैसे ही स्वाध्याय-सद्ध्यान में लीन, षट्कायरक्षक, शुद्ध-भाव वाले तप में रत साधु का पूर्वसंचित कर्म-मैल नष्ट हो जाता है।

५. नवि अत्थि नवि य होई, सज्झाएण समं तवोकम्मं।

—चन्द्रप्रज्ञप्ति ८६

स्वाध्याय के समान न तो कोई तपस्या है और न ही भविष्य में हो सकती।

६ बहुभवे संचियं खलु, सज्झाएण खणे खवेई।

—चन्द्रप्रज्ञप्ति ६१

अनेक भवों में संचित दुष्कर्म को स्वाध्याय द्वारा व्यक्ति क्षण भर में खपा देता है।

७ सज्झाए वा "सव्वदुक्खविमोक्खणे।

—उत्तराध्ययन २६।१०

स्वाध्याय सब दुःखों से मुक्त करनेवाला है।

८ सज्झाएण नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।

—उत्तराध्ययन २६।१८

स्वाध्याय से व्यक्ति ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है।

९ स्वाध्यायादिष्टदेवता—सम्प्रयोगः।

—पातञ्जलयोग दर्शन २।४४

स्वाध्याय से इष्टदेव का साक्षात्कार होता है।

१०. स्वाध्याय के अभाव में अनेक आगम विच्छिन्न हो गये। और जो विद्यमान हैं, वह स्वाध्याय की ही देन है।

११ स्वाध्याय के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—
एकाग्रता, निर्मलता और विषयांतररति—निर्विकारिता।

१२ सज्झाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—वायणा, पडिपुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा।

—भगवती २५।७।८०२

स्वाध्याय पांच प्रकार का है—(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना (४) अनुप्रेक्षा (५) धर्मकथा।

१३ सज्झायरए स भिक्खू। —दशवैकालिक १०।६

जो स्वाध्याय में अनुरक्त है, वह साधु है।

१४ स्वाध्यायान्मा प्रमदः। —तैत्तिरीयोपनिषद् १।११।१

स्वाध्याय करने में प्रमाद मत करो।



दूसरा कोष्ठक

१ पुस्तक-शास्त्र

१. यस्माद् रागद्वेषोद्धतचित्तान् समनुशास्ति सद्धर्मे।
संत्रायते च दुःखा-च्छास्त्रमिति निरुच्यते सद्भिः॥

—प्रशमरति १८७

राग-द्वेष से उद्धत चित्तवालों को धर्म में अनुशासित करता है एवं उन्हें दुःख से बचाता है, अतएव वह सत्पुरुषों द्वारा 'शास्त्र' कहलाता है (शास्त्र शब्द में दो धातुएँ मिली हैं—शासु और त्रैङ्—इनका अर्थ क्रमशः अनुशासन करना और रक्षा करना है।)

२. श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रम्। —सुभाषितरत्नमञ्जूषा

शास्त्र सुनना ही कान का आभूषण है।

३. आलोचनागोचरे ह्यर्थे शास्त्रं तृतीयं लोचनं पुरुषाणाम्।

—नीतिवाक्यामृत ५।३५

आलोचना योग्य पदार्थों को जानने के लिए शास्त्र मनुष्य का तीसरा नेत्र है।

४. अनेकसंशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यन्ध एव सः॥

—हितोपदेश-प्रास्ताविका १०

शास्त्र अनेक संशयों का नाश करनेवाला है, छिपे हुए अर्थ को

दिखानेवाला है एवं सारे जगत का नेत्र है, जिसके पास शास्त्र-रूप नेत्र नहीं है, वह अंधा है।

५. बुक्स आर अवर बेस्ट फ्रेन्ड्स। —टपर
किताबें हमारे सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं।

६. पुस्तकें ज्ञानियों की समाधि है—किसी में ऋषभ, अरिष्टनेमि एवं महावीर हैं तो किसी में राम, कृष्ण और युधिष्ठिर। किसी में वाल्मीकि, सूरदास, तुलसीदास एवं कबीर हैं तो किसी में ईसा, मूसा, और हजरतमुहम्मद। उन्हें खोलते ही वे महापुरुष उठकर हमारे से बोलने लग जाते हैं। - एक विचारक

७. मनुष्य ने जो कुछ किया, सोचा और पाया, वह सब पुस्तकों के जादूभरे पृष्ठों में सुरक्षित है। —कार्लाइल

८. विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं। —बर्नार्डशा

९. पुस्तकें ही एकमात्र अमरत्व है। —रूफसकोयेट

१०. पुस्तकों का संकलन ही आज के युग का वास्तविक विद्यालय है। —कार्लाइल

११. बिना किताबों का कमरा बिना आत्मा का शरीर है।

१२. पुराना कोट पहनो और नई किताब खरीदो। —फेल्प्स

१३. तुम्हारे पास दो रुपये हों तो एक की रोटी खरीदो और दूसरे से अच्छी पुस्तक। रोटी 'जीवन' देती है और अच्छी पुस्तक 'जीवनकला'। —[illegible]

१४. मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि ये जहाँ होंगी, वहाँ अपने आप स्वर्ग बन जाएगा। —लोकमान्य तिलक

२ पुस्तकों का चयन

१. आज पढ़ना सब जानते हैं, लेकिन क्या पढ़ना है? यह कोई नहीं जानता। —घर्नांडेगा

२. कुछ किताबें चखने के लिए हैं, कुछ निगल जाने के लिए हैं और कुछ थोड़ी सी-चबाये जाने एवं हजम किए जाने के लिए हैं। —बेकन

३ बुरी पुस्तकों का पढ़ना जहर के समान है। —टालसटाय

४ बुरी किताबों से बढ़कर कोई डाकू नहीं है। —इटली कहावत

५. अच्छी किताब वह है, जो आशा से खोली जाय और लाभ से बन्द की जाय। —एमो० ब्रॉन्सन अल्काट

६. जो पुस्तकें हमें अधिक विचारने को बाध्य करती हैं वे ही हमारी सच्ची सहायक हैं। —थ्योडोर पार्कर



३ विभिन्न दर्शनों के धर्मग्रन्थ

जैनों के—मुख्य धर्म-ग्रन्थ आचाराङ्ग-सूत्रकृताङ्ग-समवायाङ्ग-भगवती आदि बारह अङ्ग हैं।

बौद्धों के—विनयपिटक-सुत्तपिटक-अभिधम्मपिटक, ऐसे तीन पिटक-ग्रन्थ हैं। प्रथम में साधुओं के नियम हैं, दूसरे में बौद्धसिद्धान्त हैं—इसके पांच निकाय (दीर्घ-निकाय आदि) हैं। तीसरे में धार्मिक क्रिया-कलापों का वर्णन है।

वैदिकों के—वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रुति स्मृति महाभारत, रामायण एवं पुराण आदि हैं।

यहूदियों के—पुरानी बाइबल, (OLD TESTAMENT) के तोरा, नबी, कतुबे—ये तीनों भाग एवं तालमुद हैं।

ईसाइयों का—बाइबल, मरकुस, मत्ती, लूका तथा यूहन्ना के सुसमाचार—इन चार भागों में विभक्त है।

ताओ तथा कन्फ्यूशियस मतवाले चीनियों का—ताओ-तेह-किंग (ताओ उपनिषद्) है।

मुसलमानों के—कुरानशरीफ एवं हदीसशरीफ-बुखारी-मुस्लिम आदि हैं।

सिखों के—गुरुग्रंथसाहब, जपुजीसाहब, एवं गुरुमणि-साहब हैं।

पारसियों के—अवेस्ता है। इसके यस्न, वीस्परद्, यश्त, वेंदीदाद आदि अनेक भाग हैं।

आर्यसमाजियों का—मुख्यग्रंथ सत्यार्थप्रकाश है।

—विभिन्न दर्शनों की धार्मिक पुस्तकों में

●

८ प्रामाणिक ग्रन्थ

१ प्रमाणं परमं श्रुतिः । —मनुस्मृति २।१३

धर्म को जानने की इच्छा करनेवालों के लिए श्रुति-वेद ही प्रमाण है।

२ तमेव सच्चं निस्संकं, जं जिणेहिं पवेइयं ।

—आचारांग ५।५

वही बात सत्य एवं निःसन्देह है, जो 'जिन' भगवान् ने कही है।

३. देश-कालानुरूपं धर्मं कथयन्ति तीर्थंकराः ।

—उत्तराध्ययन चूर्णि २३

तीर्थंकर देश और काल के अनुरूप धर्म का उपदेश करते हैं।

४ अत्थं भासंति अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं ।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ ॥

—आवश्यक-निर्युक्ति ९२

अर्हन्तदेव केवल वाणी बोलते हैं और निपुण गणधर उस वाणी को सूत्ररूप में गूंथते हैं। इस प्रकार शासन के हितार्थ सूत्र का प्रवर्तन होता है।

५. सुत्तं गणहररइयं तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च ।
सुयकेवलिणा रइयं अभिन्नदसपुव्विणा रइयं ॥

—दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि

गणधर, प्रत्येकबुद्धि, श्रुतकेवली एवं अभिन्नदशपूर्वधारी का रचा हुआ ग्रन्थ 'सूत्र' कहलाता है।[1]

६. अत्थघरो तु पमाणं, तित्थगरमुहुग्गतो तु सो जम्हा ।

—निशीथभाष्य २२

सूत्रधर (शब्दपाठी) की अपेक्षा अर्थधर (सूत्ररहस्य का ज्ञाता) को प्रमाण मानना चाहिए, क्योंकि अर्थ साक्षात् तीर्थंकरों की वाणी से निःसृत है।

७ अत्थेण य वजिज्जइ, सुत्त तम्हा उ सो बलवं ।

—व्यवहारभाष्य ४।१०१

सूत्र (मूल शब्दपाठ) अर्थ (व्याख्या) से ही व्यक्त होता है अतः अर्थ सूत्र से बलवान (महत्त्वपूर्ण) है।

---

१ सूत्र के तीन अर्थ—सुत्त-जिसमें अर्थ की सूचना की जाए। सूत्र अर्थात् सुप्त-सोए हुए की तरह, इसे टीका-भाष्यादि द्वारा जगाया जाता है। सूत्र अर्थात् धागा जिसमें अर्थरत्न पिरोये जाएं।

◆ सूत्र के तीन भेद—संज्ञासूत्र, कारकसूत्र तथा प्रकरणसूत्र। संज्ञासूत्र में अर्थ का सामान्य निर्देश होता है। जैसे "जे छेए से सागारियं (मैथुन) न सेवए"। कारकसूत्र में [illegible] का वर्णन होता है। जैसे—"[illegible]"। प्रकरणसूत्र में नमिप्रव्रज्या एवं केशी-गौतम आदि के प्रसंग वर्णित होते हैं।

५ युक्ति एवं न्याय से ग्रंथों की प्रामाणिकता

१ अपि पौरुषमादेयं, शास्त्रं चेद् युक्तिबोधकम् ।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं, भाव्यं न्याय्यैकसेविना ॥

—योगवाशिष्ठ २।१८।२

साधारण पुरुष द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि युक्ति-युक्त बात का बोध देनेवाला हो तो वह ग्रहण कर लेना चाहिये । अन्य इसके विरुद्ध चाहे ऋषिप्रोक्त भी क्यों न हो, त्याज्य है ।

२ पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

—हरिभद्र-अन्ययोग० ३८

न तो मुझे महावीर का पक्षपात है और न कपिल आदि मतों से द्वेष है । जिसका वचन युक्तियुक्त है उसी के वचन का ग्रहण करना चाहिए ।

३ केवलं शास्त्रमाश्रित्य, न कर्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीने विचारे तु, धर्महानिः प्रजायते ।

—बृहस्पति

केवल शास्त्र का आश्रय लेकर निर्णय नहीं कर लेना चाहिए,

साथ-साथ युक्ति भी आवश्यक है, क्योंकि युक्तिहीन विचारों से हानि होती है।

४. जुत्त अजुत्त जोग न पमाणमिति वाहुकेण अरहता इसिणा बुइयं।

—ऋषिभाषित १४

युक्त बात भी यदि अयुक्त विचार के साथ है तो वह प्रमाण-स्वरूप नहीं है—ऐसे बाहुक-अर्हतर्षि ने कहा है।

६ पुस्तक-प्रकाशन

१. यूनेस्को के अनुसार दुनिया में प्रतिवर्ष लगभग चार लाख पुस्तकें छपती हैं, उसमें तीन-चौथाई पुस्तकें तो १२ देशों में छपती हैं और १९ प्रतिशत जापान को छोड़कर शेष एशियाई देशों में छपती हैं। भारत में १९६४-६५ में सिर्फ २१ हजार २६५ नई पुस्तकें छपीं।

—नवभारत टाइम्स, २६ नवम्बर, १९६५

२. विश्व में प्रथम पुस्तक १४५५ में छपी।

३. आकार की दृष्टि से सबसे बड़ी पुस्तक ब्रिटेन की 'एटलस' जो हॉलैण्ड में बनी, ५ फुट साढ़े ९ इंच ऊँची और ३ फुट साढ़े तीन इंच चौड़ी है।

४. विश्व में सबसे मोटी पुस्तक चीनी शब्दकोष है, इसमें ५०२० भाग हैं। प्रत्येक भाग में १२० पृष्ठ हैं। यह सन् १९०० में छपा था।

—विश्वदर्पण, पृष्ठ ३०-३१

५. सबसे छोटी पुस्तक ग्लासगो का 'कविता संग्रह' है वर्ग इंच के आकार की।

—पैमाना, पृष्ठ ११

६. सबसे भारी पुस्तक अमीर अफगानिस्तान की फारस में छपी थी जो हुई 'कुरान' की प्रति है, यह सोने के पत्र से

३९८ रत्नों से जड़ी हुई है। उसका मूल्य तीन हजार पौंड है, उसमें १६८ मोती, १३२ लालें, व १०६ हीरे हैं।

—नवभारत टाइम्स १ मई, १९५५

७ संसार की सबसे बड़ी पुस्तक का प्रकाशन—

कैम्ब्रिज, १२ मई (१९६८) दुनिया की आज तक की सबसे बड़ी किताब कैम्ब्रिजशायर के विस्बेच स्थित वाल्टिंग तथा मैनसैल लिमिटेड छापेखाने में छप रही है।

यह पुस्तक जब छप कर तैयार होगी तब इसका वजन होगा—डेढ़ टन! यह पुस्तक ६१० जिल्दों में होगी। प्रत्येक जिल्द होगी—७०४ पृष्ठों की। इस पुस्तक की दो हजार प्रतियां छप रही हैं। इन प्रतियों के छपने में दो साल लगेंगे।

यह पुस्तक है अमरीकी कांग्रेस के पुस्तकालयों की सूची। अमरीका के दो हजार पुस्तकालयों की तमाम पुस्तकों की सूची इसमें दी जाएगी।

ब्रिटिश-छापाखाना इस पुस्तक को छापने के लिए ५० लाख पौण्ड ले रहा है।

—नवभारतटाइम्स, १३ मई, १९६८

८ समाचारपत्र—

१९६६ के अन्त में भारत में कुल १०८७३ समाचारपत्र और नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएँ थी, जबकि १९६५ के अन्त में इनकी संख्या १००८४ थी। हिन्दी में सबसे अधिक १९३१ पत्र-पत्रिकाएँ थीं। इसके बाद अंग्रेजी में

१८४३, उर्दू में ७८५, बंगला में ५५० और गुजराती में ५१४ थी।

दैनिक समाचार पत्र २० भाषाओं में और अन्य नियत-कालिक पत्र-पत्रिकाएं ४६ भाषाओं में प्रकाशित हो रही थी। दैनिक समाचारपत्र १५ प्रमुख भाषाओं के अलावा चीनी, पुर्तगाली, कोंकणी, लुशाई (मिज़ो) और मणिपुरी में छप रहे थे। नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएँ भारतीय भाषाओं के अलावा आठ विदेशी भाषाओं, (नेपाली, अरबी, फ्रांसीसी, तिब्बती, बर्मी, इन्डोनेशियाई, पश्तो और फारसी) में भी छप रही थी।

प्रारम्भिक अनुमानों के अनुसार १९६६ में समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की कुल प्रचार-संख्या ३ करोड़ १६ लाख ६० हज़ार थी। दैनिक समाचारपत्रों में सबसे पुराना गुजराती का 'बम्बई समाचार' है, जो १८२२ में स्थापित हुआ एवं हिन्दी का सबसे पुराना समाचार-पत्र कलकत्ते का 'विश्वमित्र' है जो १९१७ में स्थापित हुआ था। —नवभारत टाइम्स, ६ अगस्त १९६७

प्रेस रजिस्ट्रार की रिपोर्ट के आधार पर

९. भारत में सर्वप्रथम समाचारपत्र २९ जनवरी सन् १७८१ को कलकत्ता से छपा था।

—हिन्दुस्तान पृष्ठ-२८

७ विश्व के प्रख्यात पुस्तकालय

१. क्षेत्र नाम एवं संख्या—

क्षेत्र	नाम	संख्या
१ मास्को (रूस)	—लेनिन लायब्रेरी	—१,१०,००,०००
२ लेनिनग्राड (रूस)	—साल्टिकोवश्चेड्रिन-पब्लिक लाइब्रेरी	—६०,००,०००
३ लन्दन (इंगलैंड)	—ब्रिटिश म्युजियम	—५०,००,०००
४ पेरिस (फ्रांस)	—बिब्लियोथेक नेशनल	—५०,००,०००
५ न्यूयार्क-(संयुक्तराज्य अमरीका)	—न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी	—५०,००,०००
६ फ्लोरेंस (संयुक्तराज्य अमरीका)	—बिबलियोटेका नेशिओनेल सेन्ट्रल	—३५,००,०००
७ नेपुल्स (इटली),	—बिबलियोटेका नेशिओनेल सेन्ट्रल	—१३,३०,०००
८ लिपजिग (जर्मनी)	—ड्यूशे बुचेरी	—२०,००,०००
९ विएना (आस्ट्रिया)	—नेशनल बिब्लियोथेक	—१५,००,०००

१० मैड्रिड (स्पेन) —बिब्लियोटेका-
नेशनल —१५,००,०००

११ एम्सटरडम —युनिवर्सिटी लाइब्रेरी
(नीदरलैण्ड) —१०,००,०००

१२ टोकियो (जापान) —इम्पीरियल
युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी—१०,००,०००

—हिन्दुस्तान, २१ जुलाई, १९६३ (रामरतनशर्मा)



अनुभव

१ पढ़ाई की अपेक्षा अनुभव का विशेष महत्त्व है। डॉक्टर-वैद्य, न्यायाधीश, वकील, ज्योतिषी, अध्यापक आदि वे ही अच्छा काम कर सकते हैं, जो अधिक अनुभवी होते हैं।

२ अनुभव की पाठशाला का अभ्यास किताब पढ़ने की अपेक्षा ज्यादा उपयोगी होता है। —महात्मा गांधी

३ ज्ञान अनुभव से अलग है, अनुभव के लिए साधना चाहिए। —समर्थगुरु-रामदास

४ जो मनुष्य न तो अपने अनुभव का लाभ उठाता और न दूसरों के अनुभव का, वह मूर्ख है।

—जवाहरलाल नेहरू

५ यदि दो घटनाओं की अनुभूति एक ही साथ हो तो उनसे भी एक प्रकार के संस्कार उत्तेजित होते हैं। इनसे भी होने लगते हैं।—बचपन में एक कुमारी के कन्धों पर चोट लगी। धाई ने उसकी सान्त्वना के साथ कामजागृति की बातें भी कीं। फिर जब भी काम जागृत होता, कंधों में दर्द होने लग जाता।

• एक मनुष्य के पेट में गाय का सींग घुसने से अस्पताल दा

हुआ। भय के संस्कारों से रात को तीन बजे नींद टूटने लगी। —नवमनोविज्ञान

अनुभवी वैद्य-डॉक्टर-वकील आदि—

१ एक स्त्री के प्रसव-समय बच्चे का हाथ बाहर निकल आया। सारे चिन्तित हो गये। एक अनुभवी वैद्य ने उसके हाथ में बत्ती का स्पर्श किया, बस, बच्चे ने अपना हाथ वापस खींच लिया।

२ युरोप में एक लड़की नींद के समय भयभीत हुआ करती थी। अनुभवी डाक्टर ने पूछा—क्या दीखता है? लड़की ने कहा—सिंह। हँसकर डाक्टर ने समझाया कि वह तो मुझसे भी मिलने रोज आया करता है। तुम डरा मत करो, उसके साथ प्रेम किया करो! लड़की रात को ज्योंही सोई, उसे सिंह दीखने लगा। वह उसके बाहें पसारकर प्रेम की चेष्टा करने लगी। फिर सदा के लिए उसका डरना बन्द हो गया।

३ सेठ का पेशाब बन्द हो गया। वैद्य ने तरबूज के छिलके घोलकर पिलाए, ठीक हो गया। पुनः बन्द हुआ। वही प्रयोग किया, लेकिन लाभ नहीं हुआ। अनुभवी ने गर्म करके पिलाने को कहा, कारण, सर्दी का मौसम था।

४ मावली (उदयपुर) में प्रभुलालजी वैद्य [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] से [illegible] द्वारा उसके पेट से [illegible] [illegible] निकाले।

५ दिल्ली में डॉक्टर जोशी ने तीन लाख रुपये लेकर अजमेर निवासी एक धनिक के मस्तक से जीवित मेंढक निकाला। रोगी वियना तक भटक आया था।

६. कोटले के नवाब ने पर्दे के अन्दर बिल्ली के पैर के डोरी बांधकर उसका एक किनारा यति जी को पकड़ाकर पूछा—देखिये बेगम साहिबा की नाड़ी क्या कहती है? यतिजी ने कहा—चूहा खाऊँ! चूहा खाऊँ!

७ सरपुरा गांव में हरजीमलजी गोलछा के यहां देशनोक-निवासी रमजान तेली ने चांदी की थाली में घी का दीप जलाकर उसके काजल से गमग्रहणी तथा लाल मकोड़ों के रावनियों को उबालकर उस पानी से पेट का दर्द मिटा दिया। (रमजान छ. मास पूर्व का खाया हुआ बता देता था।)

८ अपाढ़ा गांव में एक स्वामी आनन्दपुरी हैं। वह रोगी के हाथ में तिनका पकड़ा कर नाड़ी देखते हैं तथा उसके रोग का निदान करते हैं।

९. सिरसा निवासी श्रावक श्री भगवानदासजी पारख नाड़ी के आधार पर कितना दिन जीएगा—यह बता देते थे। श्री केवल मुनि की नाड़ी देखकर उन्होंने यह कहा कि इनकी हार्ट स्थिति मोस्ट [illegible] है—बात बिल्कुल ठीक निकली।

१०. एक मुसाफिर के हाथ पर रेल की खिड़की गिर पड़ी।

साधारण चोट आयी। उसने रेल्वे कम्पनी पर मुकदमा किया, कम्पनी के वकील "फिरोजशाह मेहता" थे। मुसाफिर ने हाथ को पट्टा लगा रखा था एवं कहता था कि मेरा हाथ ऊँचा नहीं उठ रहा है। वकील ने मजिस्ट्रेट के सामने बहस करते हुए उसको धीरे से पूछा—भाई! चोट लगने से पहले तुम्हारा हाथ कैसे रहता था? मुसाफिर ने बातों में भूलकर कह दिया कि ऐसे रहता था! कहते-कहते हाथ भी उठा कर दिखा दिया। बस, केस हार गया।

११ एक व्यापारी कपड़े की भारी गठरी कांधे पर रख रहा था। भारीपन से उसके हाथ कंधे के ऊपर ही रह गये। अनेक उपचार किए गये पर निष्फल हुये। विवाह के प्रसंग में स्त्रियों के बीच एक अनुभवी ने उसकी धोती की लांग खोली। बस, खोलते ही हाथ नीचे आ गये।

११ एक बहन उठ नहीं सकती थी, एक अनुभवी ने उसके पास अचानक एक साँप छोड़ा, भयभीत बहन तत्काल उठ खड़ी हुई।

१३ एक धनिकपुत्र ने [illegible] देखा। पागल होकर [illegible]—[illegible] कैसा? [illegible] ऐसा [illegible]—[illegible] हो गई। दिमाग ठीक हो गया।

४. जाके पांव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।

—हिन्दी कहावत

५. मैं पिया कूं ऐसी प्यारी,
पिया मैनूं देखे दिन च सौ-सौ वारी,
मैं हंसा पिया मुख मोड़े,
गया सियाला आया हाड़, पिया मैनूं भुल्या वारवार।

—पंजाबी कहावत

६ अद्भुत अनुभवी—

एक आदमी इलाज करवाता-करवाता हार गया लेकिन सिर दर्द नहीं मिटा। एक भील ने जड़ी घिसकर दो-दो तीन-तीन बूंदें उसके कानों में डालीं। थोड़ी देर बाद जोर से छींकें आईं और कई गोल-गोल कीड़े उसके नाक में से निकले। उसी दिन से सिर-दर्द मिट गया।

—मेवाड़ की घटना

◆ एक गर्भवती स्त्री को छींक आई और गर्भस्थित बच्चे की मुट्ठी खुली। वापस बन्द होते समय माता की एक खास नाड़ी मुट्ठी के बीच में आगई। माता को भयंकर पीड़ा होने लगी। एवं थोड़ी देर में वह बेहोश होगई। मृत समझकर घरवाले रोने-पीटने लगे। एक अनुभवी पड़ोसी ने सारा हाल सुना और उस स्त्री के कान के पास जाकर बंदूक का धमाका किया। बस डर से बच्चे की मुट्ठी पुनः खुली एवं नाड़ी मूलस्थान में आ गई और स्त्री बच गई।

—मध्यप्रदेश की घटना

★

१ विरुद्धनानायुक्तिप्राबल्यदौर्बल्यावधारणाय प्रवर्तमानो-
विचारः परीक्षा। —न्यायदीपिका, पृष्ठ ८

परस्पर विरुद्ध विविध युक्तियों की प्रबलता और दुर्बलता का निर्णय करने के लिये जो विचार की प्रवृत्ति होती है उसका नाम परीक्षा है।

२ परीक्षा मनुष्य को मापने का एक थर्मामीटर है।
—धनमुनि

३ परीक्षा गुणों को अवगुण और सुन्दर को असुन्दर बनानेवाली वस्तु है। प्रेम इससे उल्टा है। —प्रेमचन्द

४ व्यक्ति के अन्दर भी उतना ही झांकना चाहिए, जितना उसके ऊपर। —वेन्डर पीन्ट

५ रत्न बिना रगड़ खाये नहीं चमकता, मनुष्य बिना परीक्षा के पूर्ण नहीं होता। —चीनी कहावत



११ परीक्षा आवश्यक

१. न लोगस्सेसणं चरे। —आचारांग ४।१

गड्डरी-प्रवाह दुनिया के अनुसार आचरण मत करो।

२ कोई कितना भी महान् क्यों न हो, अंधों की तरह उसके पीछे मत चलो। —विवेकानन्द

३. दमड़ीरी हांडी भी बजा र लेणी।

—राजस्थानी कहावत

४. जौहरगुलाम देखलें, जौहर कमाल के।
कागज पर रख दिया, कलेजा निकाल के। —उर्दू शेर

५. हरचे दरख्शद तिला नेस्त। —फारसी कहावत

६ ऑल दैट गिलटर्स इज नॉट गोल्ड। —अंग्रेजी कहावत

चमकनेवाला सब सोना नहीं होता। (अर्थ—५-६)

७. सोनुं एटलुं सोनुं नहि, ऊजलुं एटलुं दूध नहि,
काला एटला मृग नहि, जनोई एटला ब्राह्मण नहि।
—गुजराती कहावत

८ काला-काला सब जामुन नहीं,
धोला-धोला सब दूध नहीं।
—हिन्दी कहावत

१ यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निघर्षण-च्छेदन-ताप-ताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा॥

—चाणक्यनीति ५।२

घिसना, काटना, तपाना, पीटना — इन चार प्रकार से जैसे सोने की परीक्षा की जाती है, वैसे ही त्याग, शील, गुण और कर्म (आचरण) — इन चारों से मनुष्य की परीक्षा की जाती है।

२ बालः पश्यति लिङ्गं, मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम्।
आगमतत्त्वं तु बुधः परीक्षते सर्वयत्नेन॥

— हरिभद्रसूरि

५. ज्ञानीपुरुष महात्माओं की पहचान आँख से ही कर लेते हैं, क्योंकि रुपयों की तरह हीरों-पन्नों को बजाने की जरूरत नहीं पड़ती, उनकी परीक्षा नजर से ही होती है।

६. सित्थेण दोणपागं, कविं च एक्काए गाहाए।

—अनुयोगद्वार ११६

एक कण से द्रोणभर पाक की और एक गाथा से कवि की परीक्षा हो जाती है।

७ संत सबद्दां परखिए, विपत पड़े घर-नार।
सूरा तबही जाणिये, रण बाजे तलवार॥

—राजस्थानी दोहा

८ जानीयात् प्रेषणे भृत्यान्, बान्धवान् व्यसनागमे।
मित्रं चापत्तिकाले तु, भार्यां च विभव-क्षये॥

—चाणक्यनीति १।११

काम के लिए भेजते समय सेवकों की, दुःख आने पर स्वजनों की, आपत्ति के समय मित्रों की और धन-क्षय होने पर स्त्री की परीक्षा करनी चाहिये।

९. शस्त्र की पहचान धार से होती है, वस्त्र की पहचान तार से होती है। इन्सान का धर्म कैसा है? इसकी पहचान जीभ से नहीं, हृदय से होती है।

—[illegible]

१०. प्राचीनकाल में मनुष्य जीवन की जांच के लिये कई प्रकार की परीक्षाएँ की जाती थीं। जैसे—(१) ओठी उपासक

पिलाना, (२) अग्नि में तपाकर लोह का फाला या गोला हाथ या जीभ पर रखना, (३) खानी तुला पर चढाना, (४) प्रज्वलित अग्निकुंड में डालना आदि-आदि। (इसको धीज भी कहा जाता था।)

- राज्य किसे दिया जाय—इस निर्णय के लिये पांच दिव्य (हथनी-घोड़ा-छत्र-चामर-कुम्भ भी) प्रकट किये जाते थे। आजकल विधानसभा लोकसभा आदि में शक्ति-परीक्षार्थ सदस्यों के मत लिये जाते हैं।

१३ परीक्षा का समय

१. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ, विशुद्धिः श्यामिकापि वा।

—रघुवंश १।१०

सोने की विशुद्धि एवं मिलावट का पता अग्नि में लगता है, ऐसे ही सत्पुरुषों की परीक्षा भी विपत्ति में ही होती है।

२. अत्यधिक विरोधी परिस्थितियों में ही मनुष्य की परीक्षा होती है। —गांधी

३. मन्त्रिणां भिन्नसन्धाने, भिषजां सान्निपातिके।
कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा, सुस्थे को वा न पण्डितः॥

—हितोपदेश ३।१२१

सन्धि-भंग होने के समय मन्त्रियों की एवं सन्निपात के समय वैद्यों की बुद्धि का पता लगता है। स्वस्थ दशा में तो हरएक बुद्धिमान बन बैठता है।

४. काकः कृष्णः, पिकः कृष्णः, को भेदः पिक-काकयोः।
वसन्तसमये प्राप्ते, काकः काकः पिकः पिकः॥

काक और कोकिल दोनों काले हैं। उनके भेद की परीक्षा वसन्त ऋतु आने पर हो जाती है।

५ मणिर्लुठति पादाग्रे, काचः शिरसि धार्यते।
क्रय-विक्रयवेलायां काचः काचो, मणिः मणिः॥

— चाणक्यनीति १५।८

चाहे मणि पैरों की ठोकरों में और काच मुकुट में लगा लिया जाए, किन्तु क्रय-विक्रय के समय परीक्षकों की नजरों में काच-काच और मणि-मणि के रूप में प्रकट हो जाता है।

६ फूटी नाहीं आवाज न्यु निसाणीहैं।

—राजस्थानी कहावत

दर्शन

१ दर्शन का अर्थ ज्ञान, मनन, चिन्तन, विचार, कल्पना या गभीरविषय हो सकता है, किन्तु वास्तविक अर्थ तत्त्वज्ञान है।
—वैदिक विचार-विमर्शन-प्रकरण-५

२. दर्शन का सीधा अर्थ है देखना या दृष्टि। उसका तात्त्विक अर्थ है—सत्य का साक्षात्कार या सत्य का सामीप्य।
—आचार्य तुलसी

३ दर्शन दृष्टि है, धर्म उसको देखने का प्रयास। दर्शन साध्य का निश्चय है, धर्म उसको पाने का प्रयास। पर आज दर्शन का अर्थ आग्रह और धर्म का अर्थ रूढि हो रहा है।
—आचार्य तुलसी

४ सारा दर्शन दो शब्दो मे है—जीवित रहने के लिए खाओ और अनावश्यक वस्तु से बचो।
—इपिक्टेट्स

५ कहा से ? किधर ? कैसे ? और क्यो ?—ये प्रश्न सपूर्ण दर्शन को आत्मसात् कर लेते है।
—जूवर्ट

६ जो कुछ सत्य है, उसका अन्वेषण और जो उचित है, उसकी कार्य मे परिणति—दर्शन के ये दो महान् ध्येय है।
—वाल्टेयर

७. एक शताब्दी का दर्शन ही दूसरी शताब्दी का सामान्य-ज्ञान होता है। —हेनरीवार्ड बीचर

८. दर्शन के अभाव में धर्म केवल अंधविश्वास मात्र रह जाता है और धर्म का बहिष्कार करने पर दर्शन केवल शुष्क नास्तिकवाद बना रहता है। —विवेकानन्द

दर्शन से लाभ—

१. दंसणेण य सद्दहे। —उत्तराध्ययन २८-३५

और दर्शन से तत्त्वों पर श्रद्धा करता है।

२. दर्शन जीवन के सभी भागों में उपयोगी है—कहीं वह उत्तेजक है, कहीं अवरोधक है और कहीं व्यापक है। वह सत्प्रवृत्ति का उत्तेजक है, असत्प्रवृत्ति का अवरोधक है। और सदाचार की दिशा में व्यापक है। —आचार्य तुलसी

३. थोड़ी दार्शनिकता मनुष्य को नास्तिकता की ओर झुकाती है, किन्तु उसकी गहनता [illegible] की ओर ले जाती है। —बेकन

दर्शन के भेद—

१. दुविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मद्दंसणे चेव, मिच्छादंसणे चेव। —स्थानांग २-१

[illegible]

२. [illegible]

[illegible]

—[illegible]

१४

दर्शन

१. दर्शन का अर्थ ज्ञान, मनन, चिन्तन, विचार, कल्पना या गभीरविषय हो सकता है, किन्तु वास्तविक अर्थ तत्त्व-ज्ञान है।
—वैदिक विचार-विमर्शन-प्रकरण-५

२. दर्शन का सीधा अर्थ है देखना या दृष्टि। उसका तात्त्विक अर्थ है—सत्य का साक्षात्कार या सत्य का सामीप्य।
—आचार्य तुलसी

३ दर्शन दृष्टि है, धर्म उसको देखने का प्रयास। दर्शन साध्य का निश्चय है, धर्म उसको पाने का प्रयास। पर आज दर्शन का अर्थ आग्रह और धर्म का अर्थ रूढ़ि हो रहा है।
—आचार्य तुलसी

४ सारा दर्शन दो शब्दो मे है—जीवित रहने के लिए खाओ और अनावश्यक वस्तु से बचो।
—इपिक्टेट्स

५. कहा से ? किधर ? कैसे ? और क्यो ?—ये प्रश्न संपूर्ण दर्शन को आत्मसात् कर लेते है।
—जूवर्ट

६ जो कुछ सत्य है, उसका अन्वेषण और जो उचित है, उसकी कार्य मे परिणति—दर्शन के ये दो महान् ध्येय है।
—वाल्टेयर

७. एक शताब्दी का दर्शन ही दूसरी शताब्दी का सामान्य-ज्ञान होता है। —हेनरीवार्ड बीचर

८ दर्शन के अभाव में धर्म केवल अंधविश्वास मात्र रह जाता है और धर्म का बहिष्कार करने पर दर्शन केवल शुष्क नास्तिकवाद बना रहता है। —विवेकानन्द

दर्शन से लाभ—

१ दंसणेण य सद्दहे। —उत्तराध्ययन २८-३५

जीव दर्शन से तत्त्वों की श्रद्धा करता है।

२ दर्शन जीवन के सभी भागों में उपयोगी है—कहीं वह उत्तेजक है, कहीं अवरोधक है और कहीं व्यापक है। वह सत्प्रवृत्ति का उत्तेजक है, असत्प्रवृत्ति का अवरोधक है। और सदाचार की दिशा में व्यापक है।

—आचार्य तुलसी

३. थोड़ी दार्शनिकता मनुष्य को नास्तिकता की ओर झुकाती है, किन्तु उसकी गहनता मुक्ति की ओर ले जाती है। —बेकन

दर्शन के भेद—

१ दुविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मद्दंसणे चेव, मिच्छादंसणे चेव। —स्थानांग-२।१

[illegible] प्रकार का कहा है— सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन।

२ [illegible]

[illegible]

—[illegible]

भारतीय आस्तिकदर्शन मुख्यतया छ. है—(१) बौद्ध, (२)नैयायिक, (३)साख्य, (४)जैन, (५)वैशेपिक, (६)जैमनीय (नास्तिकदर्शन इनमे नही गिना गया है)

दर्शनो का उद्भव—

१. बौद्धानामृजुसूत्रतो मतमभूद् वेदान्तिना सग्रहात्,
साख्याना तत एव नैगमनयाद् योगश्च वैशेपिक ।
शब्द ब्रह्मविदोऽपि शब्दनयत सर्वैर्नयैर्गु म्फिता,
जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षमुद्वीक्ष्यते ।

ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बौद्ध, सग्रहनय से वेदान्त-सारय, नैगमनय से नैयायिक—वैशेपिक और शब्दनय की अपेक्षा से ब्रह्मविदो का शब्द-दर्शन उत्पन्न हुआ, किन्तु जैन-दर्शन सभी नयो से गुम्फित है अत. इसकी श्रेष्ठता प्रत्यक्ष देखी जारही है ।

दर्शनो के प्रमाण—

१. चार्वाकोऽध्यक्षमेक सुगतकणभुजो सानुमान सशाब्द,
तद्द्वैत पारमर्प. सहितमुपमया तत्त्रय चाक्षपाद ।
अर्थापत्त्या प्रभाकृद् वदति तदखिल मन्यते भट्ट एतत्,
साभाव द्वे प्रमाणे जिनपतिसमये स्पष्टतोऽस्पष्टतश्च ॥

चार्वाक एक प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते है । बौद्ध और साख्य तीन प्रमाणो को स्वीकार करते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द (आगम) । पारमर्प —वैशेपिक दो प्रमाणो को ग्रहण करते हैं— प्रत्यक्ष और अनुमान । नैयायिको ने पाच प्रमाण मान्य किये हैं—प्रत्यक्ष- अनुमान, शब्द, उपमा और अर्थापत्ति । भट्टानुयायि-जैमनीयो के पाच तो पूर्ववत् एव एक अभाव प्रमाण—ऐसे छ प्रमाण है तथा जैनो के दो प्रमाण हैं- -प्रत्यक्ष और परोक्ष ।

दर्शनकार—

१ भारतीय दर्शनकारों में मुख्य पैसे—महावीर, बुद्ध, कपिल, गौतम, कणाद एवं जैमनीय आदि हुए हैं। वैसे ही चीन में लाओत्से और कन्फ्यूसियस, मिश्र में प्रोफिरी, रेमिनस, इंगलैंड में बेकन-जान, स्टुअर्ट, स्पेन्सर, वर्कले, ग्रीस में साक्रेटीज-प्लेटो-पीथागोरस, जर्मनी में कान्ट और फ्रांस में कानट् आदि माने गये हैं।

—वैदिकविज्ञान-विमर्शन, प्रकरण ४

२. दाढ़ी रखने मात्र से कोई दार्शनिक नहीं हो सकता।

—एक विचारक

०

१५ आस्तिक

१ अस्ति पुण्य पापमिति मतियस्य स आस्तिक ।

—सिद्धान्तकौमुदी

पुन्य है, पाप है—ऐसी जिसकी मान्यता हो, वह आस्तिक है ।

२ अत्थि मे आया उववाइए ····
से आयावादी, लोयावादी, कम्मवादी, किरियादी ।

—आचाराग १।१।१

यह मेरी आत्मा औपपातिक है, कर्मानुसार पुनर्जन्म ग्रहण करती है—आत्मा के पुर्नजन्म-सम्बन्धी सिद्धान्त को स्वीकार करनेवाला ही वस्तुत आत्मवादी, लोकवादी एव क्रियावादी है अर्थात् आस्तिक है ।

✲

नास्तिक

१ नास्ति पुण्यं पापमिति मतिर्यस्य स नास्तिकः ।

—सिद्धान्तकौमुदी

न पुण्य है, न पाप है—ऐसी जिसकी मान्यता हो, वह नास्तिक है ।

२ नास्तिको वेदनिन्दकः । —मनुस्मृति २।११

वेद की निन्दा करनेवाला नास्तिक होता है । (यहाँ वेद का अर्थ ज्ञान समझना चाहिए ।)

३ पुराने जमाने में ईश्वर पर विश्वास नहीं करनेवाला नास्तिक होता था और नये धर्म में स्वयं पर विश्वास न करनेवाला नास्तिक कहलाता है ।

—विवेकानन्द

४ परमात्मा को न माने वह नास्तिक है, पर जो [illegible] है, वह महानास्तिक है । —आचार्य तुलसी

५ दुःख और भय के समय कोई प्रकृति नास्तिक नहीं रहती । —एम० मोर

६ रात के समय एक नास्तिक ईश्वर में आधा विश्वास करने लग जाता है । —यंग

७ [illegible] नास्तिक हैं । —[illegible]

८. नास्तिकता का मूल कारण आज की पढाई—

पुरानी पढाई मे तीनो दशाओ का विचार होता था, आज केवल जागृतदशा का होता है। पुरानी पढाई मे दृश्यद्रष्टा दोनो का विचार था, आज मात्र दृश्य का है। पुरानी पढाई मे आत्मा और शरीर दोनो भिन्न समझाये जाते थे, आज आत्मा का लक्ष्य प्राय नही है तथा पुरानी पढाई मे विनय की मुख्यता थी आज विनय की कमी होती जा रही है—इन सभी कारणो से नास्तिकता बढ रही है।

●

१. नत्थि पुण्णे व पावे वा, नत्थि लोए इओवरे।
सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो॥

— सूत्रकृतांग-१।१२

न पुण्य है, न पाप है और न इस दृश्यमान-लोक के अति-रिक्त कोई संसार है। शरीर का नाश होने से जीव का नाश हो जाता है।

२. लोकायिका वदन्ति, नास्ति जीवो न निर्वृति ।
धर्माधर्मौ न विद्येते, न फलं पुण्यपापयोः ।

सम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व

१ तहियाणं तु भावाण, सब्भावे उवएसण ।
भावेण सद्दहतस्स सम्मत्त तु वियाहिय ।।

—उत्तराध्ययन २८।१५

स्वय या उपदेश से जीव-अजीव आदि सद्भावो मे आन्तरिक हार्दिक श्रद्धा का होना सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन है ।

२ यथार्थतत्त्वश्रद्धा सम्यक्त्वम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ५।३

जीवादि तत्त्वो की यथार्थश्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है ।

३ या देवे देवताबुद्धि गुरौ च गुरुतामति ।
धर्मे च धर्मधी . शुद्धा, सम्यक्श्रद्धानमुच्यते ।।

—योगशास्त्र २।२

वीतरागदेव मे देव-बुद्धि का होना, सद्गुरु मे गुरु-बुद्धि का होना और सच्चे धर्म मे धर्म-बुद्धि का होना सच्ची श्रद्धा कहलाती है ।

४ अरिहतो मह्देवो, जावज्जीव सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपन्नत्त तत्त, इय सम्मत्त मए गहिय ।।

—आवश्यक ४

अरिहन्त भगवान मेरे देव हैं, यावज्जीवन शुद्धसाधु मेरे गुरु है, जिनेश्वर देव का बनाया हुआ तत्त्व मेरा धर्म है—यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है ।

५. मिथ्यात्वत्यागतः शुद्धं, सम्यक्त्वं जायते नृणाम् ।
—आचारसार

मिथ्यात्व का त्याग करने से प्राणियों को शुद्ध सम्यक्त्व मिलता है।

सम्यक्त्व के भेद—

६. दुविहे सम्मदंसणे पन्नत्ते, तं जहा—णिसग्गसम्मदंसणे चेव अभिगमसम्मदंसणे चेव। —स्थानांग २।१।७०

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा है—स्वाभाविक अन्तःकरण से उत्पन्न होनेवाला और उपदेश से उत्पन्न होनेवाला।

७. सम्यक्त्वं त्वादौपशमिकं सास्वादनमथापरम् ।
क्षायोपशमिकं वेदं, क्षायिकं चेति पञ्चधा ॥

सम्यक्त्व पाँच प्रकार का है—(१) औपशमिक (२) सास्वादन, (३) क्षायोपशमिक, (४) वेदक (५) क्षायिक।

८. निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त-बीयरुइमेव ।
अभिगम-वित्थाररुई, किरिया-संखेव-धम्मरुई ॥
—उत्तराध्ययन २८।१६

सम्यक्त्व के दस भेद भी हैं—(१) निसर्गरुचि (२) उपदेशरुचि (३) आज्ञारुचि (४) सूत्ररुचि (५) बीजरुचि (६) अभिगम-रुचि (७) विस्ताररुचि (८) क्रियारुचि (९) संक्षेपरुचि (१०) धर्मरुचि।[1]

---

१ सम्यक्त्व के अन्य भेदों का वर्णन देखिए [illegible] प्रकाश [illegible] है।

६ समकत्व के लक्षण, भूषण, दूषण और विशुद्धि—

शमसवेगनिर्वेदानुऽकम्पास्तिक्यलक्षणैः,
लक्षणं पञ्चभि सम्यक्, सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते।
—योगशास्त्र २।१५

(१) शम—क्रोध आदि कषाय की शान्ति, (२) सवेग—मोक्ष कीअभिलाषा, (३)निर्वेद —समार से विरक्ति, (४)अनुकम्पा—दया, (५) आस्तिकता—आत्मा - कर्म - परलोक आदि पर विश्वास—ये पाच सम्यक्त्व के लक्षण है।

१० परमत्थसथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि।
वावन्नकुदसणवज्जणा य, सम्मत्तसद्दहणा॥
—उत्तराध्ययन २८।२८

(१) जीवादि पदार्थो का सही ज्ञान (२) तत्त्वज्ञानी गुरुओं की सेवा, (३) शिथिलाचारी एव (४) कुदर्शनियो से बचते रहना—ये ४ सम्यक्त्व के श्रद्धान हैं।

११ स्थैर्य प्रभावना[1] भक्ति कौशल जिनशासने।
तीर्थसेवा च पञ्चापि, भूषणानि प्रचक्षते॥
—योगशास्त्र २।१६

(१) धर्म मे स्थिरता, (२) धर्म की प्रभावना—व्याख्यानादि द्वारा, (३) जिनशासन की भक्ति, (४)कुशलता—अज्ञानियो को धर्म समझाने मे निपुणता, (५) चार तीर्थ की निर्वद्य सेवा—ये पाच सम्यक्त्व के भूषण हैं।

---

१ पावयणी धम्मकही, वाई निमित्तओ तवस्सी य।
विज्जा सिद्धो य कवी, अट्ठेव पभावगा भणिया॥
—योगशास्त्र १२।१६ टीका

१२. शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिप्रशसनम् ।
तत्सस्तवश्च पञ्चापि, सम्यक्त्व दूषयन्त्यमी ॥
—योगशास्त्र २।१७

(१) शङ्का-तत्त्वो मे सदेह, (२) काक्षा-अन्यमत की अभिलाषा, (३) विचिकित्सा-धर्मफल मे सदेह, (४) मिथ्यादृष्टि एव व्रतभ्रष्टो की प्रशसा, (५) उन का सस्तव, प्रेम अथवा ससर्ग—(ये पाच सम्यक्त्व को दूषित करनेवाले हैं— सम्यक्त्व के अतिचार-दोष हैं ।)

१३ चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयई ।
—उत्तराध्ययन २९।९

चौबीस तीर्थकरो की स्तुति करने से आत्मा सम्यक्त्व को विशेपरूप से शुद्ध करता है ।

१६ सम्यक्त्व की दुर्लभता

१ सबुज्झह किं न बुज्झह, सबोहि खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हु वणमति राइओ, णो सुलभ पुणरावि जीविय ॥

— सूत्रकृतांग २।१।१

समझो! तुम क्यो नही समझते, आगे सद्‌बोधि सम्यक्त्व का मिलना कठिन है। बीती हुई रातें वापस नही आती। मनुष्य जन्म बार-बार सुलभ नही है।

२ ईओ विद्ध समाणस्स, पुणो सबोहि दुल्लहा।

—सूत्रकृताग १५।१८

यहा से भ्रष्ट हो जाने के बाद पुन सम्यग्दर्शन का मिलना कठिन है।

३ णो सुलभ बोहिय च आहिय। —सूत्रकृताग २।३।१६

सम्यग् ज्ञान-दर्शनरूप बोधि का मिलना सुलभ नही है।

४ मिच्छादसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा।
इय जे मरति जीवा, तेसि पुण दुल्लहा बोही ॥

—उत्तराध्ययन ३६।२५२

जो जीव मिथ्यादर्शन मे अनुरक्त हैं, निदानसहित कर्म करनेवाले हैं और कृष्णलेश्या मे युक्त हैं, उनको मृत्यु के पश्चात् अन्य जन्म मे बोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है।



२० सम्यक्त्व से लाभ

१ दसणसपन्नयाएण भवमिच्छत्तछेयण करेई।

—उत्तराध्ययन २६।६०

सम्यग्दर्शन की सपन्नता से आत्मा भवभ्रमण के हेतुभूत मिथ्यात्व का छेदन करता है।

२. सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य, ध्रुव निर्वाणसगम.।

—तत्त्वामृत

सम्यक्त्वयुक्त आत्मा को अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है।

३ अतोमुहुत्तमित्त पि, फासिय हुज्ज जेहि सम्मत्त
तेसि अवड्ढपुग्गल-परियट्टो चेव ससारो।

—धर्मसंग्रह अधिकार २।२१ टीका

जो जीव अन्तर्मुहूर्त मात्र भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लेते हैं, उन के केवल अर्द्ध पुद्गल—परावर्तन ससार शेष रह जाता है।

२१ सम्यकत्व का महत्त्व

१. दसणमूलो धम्मो। —दर्शनपाहुड, २।२

धर्म का मूल दर्शन (सम्यक् श्रद्धा) है।

२. मूल धर्मस्य सम्यक्त्वम्। —हिंगुल प्रकरण

सम्यक्त्व ही धर्म का मूल है।

३. कनीनिकेव नेत्रस्य, कुसुमस्येव सौरभम्।
सम्यक्त्वमुच्यते सार, सर्वेषा धर्मकर्मणाम्॥

आंख की कीकी एव फूलो की सुरभिवत् सभी धर्मकर्मों का सार सम्यक्त्व हैं।

४ सम्यक्त्व मूलानि महाफलानि। —धर्मपरीक्षा

यथाख्यातचारित्र - केवलज्ञानप्राप्ति आदि महाफलो का मूल सम्यक्त्व ही है।

५. सम्यक्त्वसहिता एव, शुद्धा दानादिका क्रिया:।
—अध्यात्मसार

दानादि क्रियाएँ सम्यक्त्व होने से ही पूर्णतया शुद्ध होती है।

पात्र चारित्रवित्तस्य, सम्यक्त्व श्लाघ्यते न कै.।
—सूक्तमुक्तावलि

चारित्ररूप धन को रखने के लिये सम्यक्त्व ही एक पात्र है। उसकी प्रशसा कौन नही करता!

६. नत्थि चरित्त सम्मत्तविहूण, दसणे उ भइयव्व ।
सम्मत्तचरित्ताइं, जुगव पुव्व तु सम्मत्त ।
नादसणिस्स नाण, नाणेण विना न हु ति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ।

—उत्तराध्ययन २८।२९-३०

सम्यक्त्व के विना चारित्र न तो कभी था, न वर्तमान मे है और न कभी होगा। सम्यक्त्व मे चारित्र की भजना है। सम्यक्त्व चारित्र कदाचित् साथ उत्पन्न हो तो भी पहले सम्यक्त्व होगा और बाद मे चारित्र होगा। ॥२९॥

सम्यक्त्व के विना ज्ञान नही होता और ज्ञान के विना पाँच महाव्रत रूप चारित्र के (करण-चरण सप्ततिरूप—पिण्डविशुद्धि आदि) गुण प्राप्त नही होते। चारित्रगुणो के विना कर्मों का मोक्ष नही होता और अमुक्त को निर्वाण—शाश्वतमुक्तिसुख नही मिलता। ॥३०॥

७ दसणभट्ठो भट्ठो, दसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाण ।
सिज्झति चरणरहिया, दसणरहिया न सिज्झति ॥

—भक्तिपरिज्ञा गाथा ६६

सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट व्यक्ति वस्तुत भ्रष्ट है, उसको मोक्ष नही मिलता। द्रव्यचारित्र-रहित सिद्ध हो जाते है, किन्तु दर्शनरहित नही होते।

८ नाणभट्ठा दसणलूसिणो। ---आचाराग ६।४

सम्यग्दर्शन से पतित सम्यग्ज्ञान से भी भ्रष्ट हो जाता है।

९ चीरविमुक्को सवओ, दसणमुक्को य होइ चलसवओ।
सवओ लोयपुज्जो, लोउत्तरयम्मि चलसवओ ॥

—भावपाहुड १४३

जीव से रहित शरीर शव [मुर्दा-लाश] है, इसी प्रकार सम्यग्-दर्शन से रहित व्यक्ति चलता-फिरता शव है। शव लोक में अनादरणीय (त्याज्य) होता है और वह चल-शव लोकोत्तर अर्थात् धर्मसाधना के क्षेत्र में अनादरणीय रहता है।

१० दसणहीणो ण वदिव्वो। —दर्शनपाहुड २

जो दर्शन से हीन (सम्यक्श्रद्धा से रहित या पतित) है वह, वन्दनीय नहीं है।



१. भूयत्थमस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो।

—समयसार ११

जो भूतार्थ अर्थात् सत्यार्थ—शुद्धदृष्टि का अवलम्बन करता है, वही सम्यग्दृष्टि है।

२ हेयाहेय च तहा, जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी।

—सुत्तपाहुड, ५

जो हेय और उपादेय को जानता है, वही वास्तव मे सम्यग्-दृष्टिवाला है।

३ सम्मत्तदंसी न करेइ पाव। —आचारांग ३।२

सम्यग्दृष्टि परमार्थ को जानकर (आत्मध्यान मे रमण करता हुआ) पाप नही करता।

४ सम्यग्दर्शनसपन्न:, कर्मभिर्न निबद्ध्यते।
दर्शनेन विहीनस्तु, ससार प्रतिपद्यते॥

—मनुस्मृति ६।७४

सम्यग्दर्शन के बिना प्राणी ससार मे भटकता है, किन्तु सम्यग्-दृष्टि ससार के कर्मों से लिप्त नही होता।

५. सम्मदिट्ठी सया अमूढे। —दशवैकालिक १०।७

सम्यग्दृष्टि सदा अमूढ है, वह सारासार मे मोहित नही होता।

६ जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे,
जे अणण्णारामे से अणण्णदंसी। —आचारांग २।६

जो अनन्यदर्शी-सम्यग्दृष्टि है, वह अनन्यआराम-परमार्थ में रमण करनेवाला है। जो अनन्यआरामवाला है, वह अनन्यदर्शी है। तत्त्व यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव अद्वितीय आनन्द में रमण करता है।

७. ज कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्व णिज्जरणिमित्त ।

—समयसार १९३

सम्यग्दृष्टि आत्मा जो कुछ भी करता है, वह उसके कर्मों की निर्जरा के लिए ही होता है।

८ खवेति अप्पाणममोहदसिणो । — दशवैकालिक ६।६२

तत्त्वदर्शी पुरुष अपने पूर्व कर्मों का क्षय कर डालते हैं।

९. सम्मदिट्ठी जीवो, गच्छइ नियम विमाणवासिसु ।
जइ न विगयसम्मत्तो, अह नवि बद्धाउयपुव्व ॥

सम्यग्दृष्टिजीव निश्चित रूप से वैमानिकदेवों में जाता है, लेकिन शर्त यह है कि मरने के वक्त सम्यक्त्व विद्यमान हो और सम्यक्त्व के पूर्व आयुष्य का बंध न पड़ा हो।

१०. सम्यग्दृष्टि जीव तैरते हुए जहाज के समान समुद्र मे नही डूबता। वह नटो के समान जय-पराजय मे सुख-दु ख नही मानता। वह ससार को जेल समझता है न कि राजमहल। वह काली कोठरी मे न होकर कॉच की कोठरी मे है, जिसने स्व-पर को देख सकता है। वह खुद को घर का मालिक न मान कर मैनेजर मानता है। वह वस्तु को यथावस्थितरूप मे देखता है, रोगी नेत्रवत् विकृतरूप मे नही।

११ सम्यग्दृष्टि को इन १२ बोलो का चिन्तन करते रहना चाहिए—

मैं भव्य हू या अभव्य, सयम्ग्दृष्टि हू या मिथ्यादृष्टि, परित्त हू या अपरित्त, सुलभबोधि हू या दुर्लभबोधि, चरम हू या अचरम, आराधक हू या विराधक ।

—राजप्रश्नीय-सूर्याभाधिकार

१२ सम्यग्दृष्टि जीवों को ऐसा विश्वास कभी न करना चाहिए कि लोक-आलोक, जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव-सवर, वेदना-निर्जरा, बन्ध-मोक्ष, धर्म-अधर्म, क्रिया-अक्रिया, क्रोधादि-कषाय, राग-द्वेष, चतुर्गति-रूपससार, मोक्ष-अमोक्ष, एव सिद्धस्थान नही हैं, किन्तु निश्चितरूप से मानना चाहिए कि उक्त वस्तुएँ विद्यमान हैं । —सूत्रकृताग श्रुत २, अ० ५, गाथा १२ से आगे

१३. निस्सकिय-निक्कखिय-निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ ॥

—उत्तराध्ययन २८।३१

(१) सर्वज्ञ भगवान् की वाणी मे सदेह नही करना, (२) असत्य मतो का चमत्कार देखकर उनकी अभिलाषा नही करना, (३) धर्मफल की प्राप्ति के विषय मे शका नही करना, (४) अनेक मत-मतान्तरो के विचार सुनकर दिग्मूढ न बनना अर्थात् अपनी सच्ची श्रद्धा से न डोलना, (५) गुणिजनो के गुणो की प्रशसा करना और गुणी बनने का प्रयत्न करना (६) धर्म से विचलित होते हुए प्राणी को समझाकर पुन. धर्म मे स्थापित करना, (७) वीतरागभाषित धर्म का हित करना,

और स्वधर्मि-बन्धुओ के साथ धार्मिकप्रेम रखना एव उन्हे धार्मिक सहायता देना, (८) सद्धर्म की प्रभावना करना ये आठ सम्यग्दृष्टि जीवो के अचारने योग्य कार्य हैं अर्थात् सम्यक्त्व के आठ आचार हैं।

१४ मिच्छत्त परियाणामि, सम्मत उवसपज्जामि।

—आवश्यकनिर्युक्ति ४

मैं मिथ्यात्व का त्याग करता हू एव सम्यक्त्व को अंगीकार करता हूं।

१५. दिट्ठिम दिट्ठि न लूसएज्जा। —सूत्रकृताग १४।६५

सम्यग्दृष्टि को चाहिए कि वह अपनी दृष्टि को दूषित न करे।

१६. अवच्छलत्ते य दसणे हाणी। —बृहत्कल्पभाष्य २७११

धार्मिकजनो मे परस्पर वात्सल्यभाव की कमी होने पर सम्यग्दर्शन की हानि होती है।

१७. ते धन्ना सुकयत्था, ते सूरा तेवि पडिया मणुया।
सम्मत्त सिद्धियर, सुविणे वि ण मइलिय जेहि॥

जिन्होने समस्त अर्थ को सिद्ध करनेवाले सम्यक्त्व को स्वप्न मे भी मैला नही किया—वे मनुष्य धन्य है, कृतार्थ हैं, शूर हैं एव वे ही पण्डित हैं।

१८. जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयण जे करेंति भावेण।
अमला असकिलिट्ठा, ते होति परित्तसमारी॥

—उत्तराध्ययन ३६।२६०

जो व्यक्ति जिनवाणी मे अनुरक्त हैं एव उसके अनुसार सद्भावों मे क्रिया करते हैं तथा जो मिथ्यात्वादि मल और रागादि क्लेश से रहित हैं, वे परित्तसंसारी होते हैं।

२३ श्रद्धा

१. सद्धा परमदुल्लहा। —उत्तराध्ययन ३।६

सच्ची श्रद्धा का मिलना अत्यन्त कठिन है।

२ धर्म के मूल मे श्रद्धा रही है। जहाँ श्रद्धा नही है, वहा धर्म भी नही है। - गाधी

३ विना श्रद्धा की क्रिया मृतशरीर पर शृगार के समान है।

४ विना श्रद्धा के व्यक्ति कानी विदियो मे शून्य-आँखो के समान है।

० यूरोप मे "माइकल एजिलो" नामक चित्रकार था। दूसरे चित्रकार ने ईर्ष्यावश एक चित्र बनाया, किन्तु उसकी कमी न समझ सका। एजिलो आया एव चित्र की आँखो मे दो काली विदियाँ लगा दी। सब तो चित्र अद्‌भुत ही हो गया।

५ श्रद्धा और विश्वास न रहे तो क्षण भर मे प्रलय हो जाये। —गांधी

६. ज्ञान और श्रद्धा विना, अधतुल्य इन्सान।
पढी निरर्थी हो न यदि सूर्ज और निमान ॥ ४= ॥

पढे लिखे वक्ता बने, काव्यो के कर्तार।
सयम मे श्रद्धा न यदि, तो सब कुछ बेकार ॥ ४५ ॥
सयम की श्रद्धा बिना, धरा वेष मे क्या ?
तेल न दीपक मे रहा, समझो शीघ्र बुझा ॥ ४६ ॥

—दोहा-सदोह

७ श्रद्धा किसी के सलाह की राह नही देखती।

—गांधी

८ श्रद्धा परमात्मा मे होनी चाहिये, अपने नेता मे होनी चाहिये, अपने लक्ष्य के प्रति होनी चाहिये, अपने कार्य के प्रति होनी चाहिये और फिर अपने प्रति होनी चाहिये। —आचार्य तुलसी



२४ श्रद्धावान्

१ ज सक्कइ त कीरइ, ज न सक्कइ तयम्मि सद्दहणा ।
सद्दहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामर ठाण ॥
—धर्मसग्रह २।२१

जिसका आचरण हो सके, उसका आचरण करना चाहिये एव जिसका आचरण न हो सके, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिये । श्रद्धा रखता हुआ जीव जरा एव मरणरहित मुक्ति का अधिकारी होता है ।

२ अदक्खु व दक्खुवाहिय सद्दहसु । —सूत्रकृताग २।३।११

नही देखनेवालो ! तुम देखनेवालो की बात पर विश्वास करके चलो !

३ श्रद्धावाल्लभते ज्ञान, तत्पर सयतेन्द्रिय ।
ज्ञान लब्ध्वा परा शान्ति-मचिरेणाधिगच्छति ॥
—गीता अ० ४।३९

श्रद्धावान् व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त होता है और इन्द्रियो का सयम करता हुआ तपयुक्त बनता है । सद्ज्ञानप्राप्ति के बाद उसे शीघ्र ही उत्कृष्ट शान्ति (मुक्ति) मिल जाती है ।

पढे लिखे वक्ता बने, काव्यो के कर्तार !
सयम मे श्रद्धा न यदि, तो सब कुछ बेकार ॥ ४५ ॥
सयम की श्रद्धा बिना, धरा वेप मे क्या ?
तेल न दीपक मे रहा, समझो शीघ्र बुझा ॥ ४६ ॥

—दोहा-संदोह

७ श्रद्धा किसी के सलाह की राह नही देखती ।

—गाधी

८. श्रद्धा परमात्मा मे होनी चाहिये, अपने नेता मे होनी चाहिये, अपने लक्ष्य के प्रति होनी चाहिये, अपने कार्य के प्रति होनी चाहिये और फिर अपने प्रति होनी चाहिये ।

—आचार्य तुलसी



२४ श्रद्धावान्

१ जं सक्कइ तं कीरइ, जं न सक्कइ तयम्मि सद्दहणा ।
सद्दहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामरं ठाणं ॥
—धर्मसंग्रह २।२१

जिसका आचरण हो सके, उसका आचरण करना चाहिये एवं जिसका आचरण न हो सके, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिये । श्रद्धा रखता हुआ जीव जरा एवं मरणरहित मुक्ति का अधिकारी होता है ।

२ अदक्खु व दक्खुवाहियं सद्दहसु । —सूत्रकृतांग २।३।११

नहीं देखनेवालो ! तुम देखनेवालों की बात पर विश्वास करके चलो !

३. श्रद्धावाल्लभते ज्ञानं, तत्पर: संयतेन्द्रिय: ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति-मचिरेणाधिगच्छति ॥
—गीता अ० ४।३९

श्रद्धावान् व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त होता है और इन्द्रियों का संयम करता हुआ तत्पर बनता है । सद्ज्ञानप्राप्ति के बाद उसे शीघ्र ही उत्कृष्ट शान्ति (मुक्ति) मिल जाती है ।

४. अश्रद्धा परम पापं, श्रद्धा पापविमोचनी।
जहाति पाप श्रद्धावान्, सर्पा जीर्णामिव त्वचम् ॥

अश्रद्धा उत्कृष्ट पाप है और श्रद्धा पाप को नष्ट करनेवाली है। श्रद्धावान व्यक्ति पाप को उसी प्रकार छोड देता है, जैसे जीर्ण कचुकी को सांप।



२५ अश्रद्धावान् (शंकाशील)

१ कह्-कह वा वितिगिच्छतिन्ने । —सूत्रकृतांग १४।६

साधक को चाहिए कि वह किसी न किसी तरह शंका से दूर हो जाए।

२. वितिगिच्छासमावन्नेण नो लहई समाहिं ।

—आचारांग ५।५

धर्मफल में संदेह रखनेवाला समाधि नहीं पा सकता।

३ अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति ।

—गीता अ० ४।४०

जो अज्ञानी है, श्रद्धाहीन है, और जो शंकाशील है, वह नष्ट हो जाता है।

४ अश्रद्दधानाः पुरुषा, धर्मस्यास्य परंतप !
अप्राप्य मां निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

—गीता अ० ९।३

हे अर्जुन! इस धर्म पर अश्रद्धा करनेवाले पुरुष मुझे न पाकर संसार में भटकते रहते हैं।

५ मोर-अण्डे का दृष्टान्त—

चम्पानगर-निवासी दो बालमित्रों को मोर के अण्डे

मिले। एक इसमें से मोर बनेगा या नहीं ! ऐसे शङ्काशील होकर अण्डे को बार-बार हिलाकर देखने लगा एवं अण्डा नष्ट हो गया। दूसरा मित्र विश्वस्त होकर अण्डे की विधिवत् सार-संभाल करने लगा। फलस्वरूप उसमें से अद्भुत मोर उत्पन्न हुआ। मयूरपालक से नृत्यकला सीखकर वह ऐसा नाचने लगा कि दर्शकलोग ताज्जुब होकर वाह-वाह करने लगे।

—ज्ञातासूत्र अध्ययन ३ के आधार पर

६. शंका से कील ढीली रह गई—

इन्द्रप्रस्थ नगर में राजा अनंगपाल राज्य करते थे। एक दिन उनकी अध्यक्षता में नया गढ स्थापित करने के लिए ज्योतिषी ने पृथ्वी में एक मन्त्रित कील डाली एवं कहा—यह कील शेषनाग के फन पर लगी है अतः राज्य सुस्थिर होगा। राजा आदि को विश्वास न होने से वह कील निकाली गई तो खून से भरी हुई निकली ! राजा ने उसे पुनः लगाने के लिये कहा। कील लगाकर ज्योतिषी बोला—अब यह पूर्ववत् सुदृढ नहीं बनेगी—ढीली रहेगी एवं यहाँ किसी का राज्य स्थिर न हो सकेगा ! उस दिन से शहर का नाम (जो इन्द्रप्रस्थ था) ढीली हुआ और अपभ्रंश होकर ढीली का दिल्ली बन गया।

—पुरानी कथाओं के आधार पर

७ आचार्य आर्यापाढ शिष्यों को अनुयोग तप करवा रहे थे। बीच मे स्वर्गवासी बने, मूल शरीर मे प्रविष्ट होकर तप पूरा करवाया, फिर प्रकट होकर भेद खोला। शिष्यों के मन मे शंका हुई। परस्पर वन्दना-व्यवहार छोड़ा। राजा बलभद्र ने समझाने के लिए उन्हे मारने का हुक्म दिया—यह कहकर कि क्या पता आप साधु है या चोर। (साधु समझ गए)।

(विशेषावश्यकभाष्य के आधार पर)



२६ संशय (शङ्का)

१. न हि सशयमनारूह्य, नरो भद्राणि पश्यति ।

जिज्ञासारूप सशय के विना मनुष्य कल्याण का मार्ग नही देख सकता ।

२. आशिक्षायै प्रश्निनम्, उपशिक्षाया अभिप्रश्निनम् ।

यह समझ लो कि जो प्रश्न करता है, वही उस विषय को जानता है । समीक्षक ही किसी पदार्थ को ठीक-ठीक समझ सकता है ।

३. शंका दो प्रकार की होती है—जिज्ञासारूप और सदेह-रूप । गौतम की शकाये जिज्ञासारूप थी । उनके प्रश्न सशयप्रश्न माने गये है ।

४. छ प्रकार के प्रश्न—

(१) संशयप्रश्न—गौतमस्वामीवत् पूछना, वह ।

(२) व्युद्ग्रहप्रश्न—कलहार्थ जो प्रतिवादी पूछता है, वह ।

(३) अनुयोगीप्रश्न—अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए जो वक्ता पूछा करता है, वह ।

(४) **अनुलोमप्रश्न**—आप कुशल तो हैं—इत्यादि अनुकूल करने के लिए जो पूछा जाता है, वह।

(५) **ज्ञानप्रश्न**—केशी-गौतमवत् जो ज्ञानी से ज्ञानी पूछता है, वह।

(६) **अतथाज्ञानप्रश्न**—जो अज्ञानी-अज्ञानी से पूछता है, वह। (ऊटपटाग प्रश्न।)

(स्थानाग ६।५३४ के आधार पर)



२७ विश्वास

१. विश्वास ही जीवन की प्रेरक शक्ति है।

—टालस्टाय

२ विश्वास से बढकर कोई दवा नही, इलाज तो बहाना है—

३. हम विश्वास के आधार पर चलते हैं। दृष्टि के आधार पर नही। —बाइबिल

४. जो कुछ मैंने देखा है, वह मुझे यही शिक्षा देता है कि जो कुछ मैंने नही देखा, उसके लिए प्रभु पर विश्वास करूँ। —इमर्सन

५. आस्था कहते हैं उन वस्तुओ मे विश्वास करने को, जिन्हे हम देख नही सकते। इसका पुरस्कार होता है उस वस्तु का दर्शन, जिसमे हम विश्वास करते हैं।

—संत अगस्तीन

६. विश्वास से साक्षात्कार, विनय मे उन्नति, सत्य मे समता, प्रेम मे आनन्द, धैर्य से शान्ति, वैराग्य मे ज्ञान, समर्पण से भक्ति, और निर्भरता से मुक्ति प्राप्त होती है।

७ सिपाही की तरह ईश्वर आदि का भी विश्वास रखो !

८ कवनहु सिद्धि कि बिनु बिश्वासा। —रामचरितमानस

९ सुना जाता है कि ईश्वर के विश्वास से गौतम—मुनि के पैरों मे आंखें हो गई एवं बालक के घर चीनी आ गई। गुरु के विश्वास से शिष्य का रोग मिट गया। धर्म के विश्वास से जिनदास श्रावक को वचनसिद्धि का वर मिला और प्रभुवाणी के विश्वास ने रोहणिया चोर स्वर्गगामी बना। —धनमुनि

१० विश्वास एक ऐसी चीज है कि इसके बिना किसी का काम नही चल सकता। संसार मे यदि पुत्र माता का, सास बहू का, पति स्त्री का, सेठ मुनीम का, राजा दीवान का एवं रोगी वैद्य का विश्वास न करे तो क्या दशा हो? अन्न, जल, फल, शाक आदि का विश्वास न करे तो दुनिया भूखी-प्यासी मर जाये। तो फिर आत्मा-परमात्मा एवं धर्म आदि पर विश्वास न रखनेवालों का क्या हाल होगा? —एक विचारक

११ विश्वास के बल पर ही वकीलों को लाखों—करोडों का केस, डॉक्टरों को शरीर एवं नाइयों को शरीर का सर्वोत्कृष्ट-अंग-मुँह सौंपा जाता है।

१२ मास्टर के विश्वास से ए-बी-सी-डी आती है, पारस्परिक विश्वास से लाखों-करोडों का लेन-देन व व्यापार होता है, और तो क्या? रेल, मोटर, स्टीमर एवं विमानों की यात्राएँ भी विश्वास के आधार पर ही होती है।

१३. महापुरुषो का विश्वास इतना प्रबल और अनन्य होता है कि वे पानी का घी और बालु की चीनी तक बना सकते हैं। —स्वामी शिवानन्द

१४ सदाचरण के अतिरिक्त विश्वास को दृढ बनानेवाली दूसरी वस्तु नही है। -- एडीसन

१५. जैसे-फल के पहले फूल, वैसे ही सत्कार्य के पहले विश्वास। —हर्बं बैटली

जब बहुत आदमियो से काम लेना हो तो अविश्वास रख कर चलना गलत नीति है। —गाधी

१६ तीन पर अवश्य विश्वास करो—(१) भगवान की भक्ति पर (२) आत्मा की शक्ति पर. (३) शुद्ध आचरण पर।

१७ न सर्वत्रविश्रम्भी न सर्वाभिशङ्की।

—चरकसहिता सूत्र स्थान ८।२६

न तो सब का विश्वास करना चाहिए और न सब मे शका करनी चाहिए।

१८ प्रेम सबसे करो! विश्वास कुछ पर करो। किसी का बुरा न करो। —शेक्शपियर

*

२८

विश्वास के अयोग्य

१. अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्य.।

—कौटलीय-अर्थशास्त्र

विश्वास के अयोग्य व्यक्तियों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

२ न विश्वासस्तु कर्तव्य, कृतवैरे कथचन।

जिससे वैर हो, उसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिए।

३ तदजाकृपाणीय य· परेषु विश्वास।

—नीतिवाक्यामृत ३।५६

शत्रुओं पर विश्वास करना बकरी की गर्दन पर तलवार धरने के समान है।

४ नदीना नखिना चैव, शृङ्गिणा शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्तव्य., स्त्रीषु राजकुलेषु च॥

—चाणक्यनीति १।१५

नदियों का, नखवाले सिंह-व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं का, सीगवाले गाय-भैंस आदि पशुओं का, खड्ग आदि शस्त्रधारी पुरुषों का, स्त्रियों का और राजाओं का—इन सबका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

५ मार्जारो महिषो मेष., काक. कापुरुषस्तथा।
विश्वासात्प्रभवन्त्येते, विश्वासस्तत्र नोचित.॥

—हितोपदेश १।८८

मार्जार, महिष, मेष, काक और कापुरुष (कायर)—ये विश्वास करने से प्रत्युत्त आक्रमण करते हैं अत. इन पर विश्वास करना अनुचित है।

६ वह्निर्वारि वणिग् विष विषधरो वैद्यश्च वेश्या वसु,
वक्री वानर-वारणश्च विषयान्धो वैरिको वञ्चक।
व्याघ्रो वै वसुधाधिपश्च वनिता वाजी वृको वेसरो,
विश्वास्या न कदाप्य हो! बुधजनैरेते वकारा. किल।

वह्नि-अग्नि, वारि-पानी, वणिक, विष, विषधर-साप, वैद्य, वेश्या, वसु-धन, वक्री-टेढा, वानर, वारण-हाथी, विषयान्ध, वैरी, वचक-ठग, व्याघ्र, वसुधाधिप-राजा, वनिता-स्त्री, वाजी-घोडा, वृक-भेडिया, वेसर-खच्चर, इतने 'वकार' आदि वालो का विद्वज्जनो को कभी विश्वास न करना चाहिए।

७. न विश्वसेत कुमित्रे तु, मित्रे चापि न विश्वसेत्।
कदाचित् कुपित मित्र, सर्व गुह्य प्रकाशयेत्॥

—चाणक्यनीति २।६

कुमित्र पर तो विश्वास करना ही नही चाहिये, किन्तु मित्र पर भी न करना चाहिये। कदाचित् मित्र भी रुष्ट होकर सारा गुप्त भेद खोल दे।

८ चार पर कभी भरोसा मत करो—

(१) शत्रु के प्रेम पर, (२) स्वार्थी की प्रशसा पर,
(३) ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर, (४) धूर्त के सदाचार पर।

६. चूडावतजी—राजा रायसिंहजी का अविश्वास देखकर

दीवान कर्मचन्दजी वछावत सपरिवार बीकानेर से दिल्ली चले गये। अकबर ने उन्हे कुछ ओहदा दे दिया। आखिर बीमार सुनकर महाराज उनसे मिलने गये एव रोये। कर्मचन्दजी ने अपने पुत्रो से कहा—आँसू दुःख के न होकर मै सुख से मर रहा हू, इस बात के थे। भूलकर भी तुम इनका विश्वास न करना। इनकी मृत्यु के बाद पुत्रादि राजा के आग्रहवश बीकानेर आये, दीवान बने एव फिर सब कुमृत्यु से मारे गये।

विश्वासघात

१ न विश्वासघातात् पर पातकमस्ति ।

—नीतिवाक्यामृत २१।२२

विश्वासघात से बढकर कोई पाप नही ।

२. विश्वासप्रतिपन्नाना, वञ्चने का विदग्धता ।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि, हत्वा कि नाम पौरुषम् ?

—हितोपदेश ४।५१

विश्वास मे आये हुये व्यक्तियो को ठगना कौनसी बुद्धिमत्ता है और गोद मे सोये हुए को मारना कौनसी बहादुरी है ?

※

३० मिथ्यादर्शन-मिथ्यात्व

१ विपरीततत्त्वश्रद्धा मिथ्यात्वम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ४।१६

जीवादि तत्वों को विपरीत समझना मिथ्यात्व है।

२ अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरावपि ।

अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ॥

—योगशास्त्र २।३

राग-द्वेषयुक्त देव में भगवद्बुद्धि का होना, महाव्रतहीन गुरु में सद्गुरुबुद्धि का होना और अधर्म में धर्मबुद्धि का होना मिथ्यात्व है क्योंकि यह विपरीत धारणा है।

३ मिथ्यात्वं परमो रोगो, मिथ्यात्वं परमं तमः ।

मिथ्यात्वं परमः शत्रु-र्मिथ्यात्वं परमं विषम् ॥

—योगशास्त्र

मिथ्यात्व बड़ा भारी रोग है, घोर अन्धकार है, उत्कृष्ट शत्रु है और हलाहल जहर है।

४ मिच्छादिट्ठि न सेवेय्य । —धम्मपद १६७

मनुष्य को मिथ्याधारणा से बचना चाहिए।

५ नरस्य मिथ्यात्वयुतं न जीवितम् ।

मिथ्यात्वयुक्त जीना मनुष्य के लिए उचित नहीं है।

*

४. दो प्रकार का मिथ्यात्व है—लौकिक मिथ्यात्व और लोकोत्तर मिथ्यात्व।

५. लौकिकमिथ्यात्व दो तरह का है—देवसम्बन्धी और गुरुसम्बन्धी।

६. लोकोत्तरमिथ्यात्व भी दो प्रकार का है—देवसम्बन्धी और गुरुसम्बन्धी।

●

३२ मिथ्यादृष्टि-मिथ्यात्वी

१ मिच्छादिट्ठि समादाना, सत्ता गच्छति दुग्गति ।

—धम्मपद ३।६

मिथ्यादृष्टि को धारण करनेवाले जीव दुर्गति मे जाते हैं ।

२. मिच्छादिट्ठी अणारिया, ससारमणुपरियट्टति ।

—सूत्रकृताग २।३२

मिथ्यादृष्टि अनार्य ससार मे चक्र लगाते रहते हैं ।

३. मिच्छादसणरत्ता, सनियाणा हु हिंसगा ।
इय जे मरति जीवा, तेसि पुण दुल्लहा बोही ॥

—उत्तराध्ययन ३६।२५५

जो जीव मिथ्यादर्शन मे रक्त है, निदानसहित है एव हिंसा मे प्रवृत्त हैं—ऐसी स्थिति मे मरनेवालों को अग्रिम जन्म मे सम्यक्त्व का मिलना कठिन है ।

४ कुप्पवयणपासण्डी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।

—उत्तराध्ययन २३।६३

'कु' अर्थात् असत्य प्ररूपणा करनेवाले सभी पाखण्डी उन्मार्ग-गामी हैं ।

★

तीसरा कोष्ठक

१ तत्त्व

१. तत्त्व पारमार्थिक वस्तु। —जैनसिद्धान्तदीपिका २।१

पारमार्थिक वस्तु का नाम तत्त्व है।

२. जिणपन्नत्त तत्त। —आवश्यक ४

जिनेश्वर देव प्ररूपित सवर-निर्जरारूप धर्म ही तत्त्व है।

३. जीवाऽजीवा य बधो य, पुण्ण पावासवो तहा।
सवरो निज्जरा मोक्खो, सतेए तहिया नव।
—उत्तराध्ययन २८।१४

(१) जीव, (२) अजीव, (३) बध, (४) पुण्य, (५) पाप, (६) आस्रव (७) सवर, (८) निर्जरा, (९) मोक्ष—ये नव-तत्त्व सत् पदार्थ है।

(स्थानाग ९।६६५ में भी नव सद्भाव पदार्थ कहे हैं)

४. अतरतच्च जीवो, बाहिरतच्च हवति सेसाणि।
—कार्तिकेयानुप्रेक्षा २०४

जीव (आत्मा) अन्तस्तत्त्व है, बाकी सब द्रव्य बहिस्तत्त्व हैं।

५ एकाग्रो हि बहिर्वृत्ति-निवृत्तस्तत्त्वमीप्यते।

एकाग्र होकर बाह्यवृत्तियों से निवृत्त होनेवाला व्यक्ति ही तत्त्व (वस्तु के रहस्य) को पाता है।

६ यथा-यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम।
तथा-तथा न रोचन्ते, विषया सुलभा अपि।
यथा-तथा न रोचन्ते, विषया सुलभा अपि।
तथा-तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।

—इष्टोपदेश ३७-३८

बुद्धि मे ज्यो-ज्यो उत्तमतत्त्व प्रवेश करता है त्यो-त्यो सुलभ होने पर भी इन्द्रियो के शब्दादि विषयो मे रुचि नही रहती एव ज्यो-ज्यो वह रुचि हटती है, त्यो-त्यो आत्मतत्त्व बुद्धि मे प्रविष्ट होता है।

७ गहे तत्त्व ज्ञानी पुरुष, बात विचारि-विचारि।
मथनहारि तजि छाछ को, माखन लेत निकारि।

८ समियति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ। —आचारांग ५।५

आत्मार्थिता से जिस तत्त्व को सत्य माना जाए, उसके लिए वह तत्त्व सत्य ही है, फिर चाहे वह सत्य हो या असत्य।

२ द्रव्य

१ दव्वं सल्लक्खणयं, उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।

—पञ्चास्तिकाय १०

द्रव्य का लक्षण सत् है और वह सदा उत्पाद, व्यय एवं ध्रुवत्व-भाव से युक्त होता है ।

२ सव्वं चिय पइसमयं, उपज्जइ नासए य निच्चं च ।

—विशेषावश्यकभाष्य ५४४

विश्व का प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है और साथ ही नित्य भी रहता है ।

३ नो य उप्पज्जए असं । —सूत्रकृतांग १।१।१६

असत् कभी सत् नही होता ।

४ अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ,
नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ।

—भगवती १।३

अस्तित्व अस्तित्व मे परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व मे परिणत होता है अर्थात् सत् सदा सत् ही रहता है और असत् सदा असत् ।

५. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा,
जं जीवा अजीवा भविस्संति ।
अजीवा वा जीवा भविस्सति ।। —स्थानाङ्ग १०

न ऐसा कभी हुआ है, न होता है और न कभी होगा ही कि जो चेतन हैं, वे कभी अचेतन (जड) हो जाएँ, और जो जड अचेतन हैं, वे चेतन हो जाएँ।

६ गुणाणमासओ दव्व, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खण पज्जवाण तु, उभओ अस्सिया भवे॥

—उत्तराध्ययन २८।६

पुद्गल मे वर्ण-गध आदि की तरह जिसमे गुण अवश्य रहे, वह द्रव्य है। जीव मे चेतनता की तरह जो सदा द्रव्य के साथ ही रहे, वे गुण हैं तथा जो एकत्व, पृथक्त्व, सख्या, आकार व सयोग-विभाग की तरह द्रव्य-गुण दोनो मे रहे, वह पर्याय है।

७. धर्माधर्माकाश-पुद्गल-जीवास्तिकाया द्रव्याणि,कालश्च।

—जैनसिद्धान्तदीपिका १।१-२

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय—ये द्रव्य हैं, और काल भी द्रव्य है।

८ द्रव्य पर्यायवियुत, पर्याया द्रव्यवर्जिता।
क्व कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन च॥

पर्याय के बिना द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें कहाँ, कब, किसने, किस स्वरूप एव प्रमाण से देखी? अर्थात् किसी भी तरह नही मिलती।

९. निर्विशेष हि सामान्य, भवेत् खरविषाणवत्।
सामान्यरहितत्वेन, विशेषास्तद्वदेव हि॥

विशेष के बिना सामान्य गदहे के सींगवत् है और सामान्य-रहित विशेष भी वैसा ही है।

८ गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायण सव्वदव्वाण, नह ओगाहलक्खणं ॥९॥
वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेण दसणेण च, सुहेण य दुहेण य ॥१०॥
सद्दन्धयार-उज्जोओ, पभा छायातवो वि य।
वन्न-रस-गन्ध-फासा, पुग्गलाण तु लक्खण ॥१२॥
—उत्तराध्ययन २८

गति मे अपेक्षित सहायता करना धर्मद्रव्य का लक्षण है। ठहरने मे अपेक्षित सहायता करना अधर्मद्रव्य का लक्षण है। आकाश सभी द्रव्यो का भाजन है। अवगाहन करना एव दूसरे द्रव्यो को अवकाश देना उसका लक्षण है ॥९॥

पदार्थों के परिवर्तन मे सहायक होना कालद्रव्य का लक्षण है। जीवद्रव्य का लक्षण उपयोग है तथा ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से भी जीव पहचाना जाता है ॥१०॥

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श—ये पुद्गलद्रव्य के लक्षण है ॥१२॥

९ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—
घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थितिष्वलम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्य, जनो याति सहेतुकम् ॥५९॥
पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधिव्रत।
अगोरसव्रतो नोभे, तस्मात्तत्त्व त्रयात्मकम् ॥६०॥
—आप्तमीमासा

तीन मनुष्य सुनार की दूकान पर गए। एक को स्वर्णघट लेना था, दूसरे को स्वर्णमुकुट की आवश्यकता थी एव तीसरा केवल

स्वर्ण का इच्छुक था। सुनार स्वर्णघट को तोडकर स्वर्णमुकुट बना रहा था। उसे देखकर पहला शोकातुर हुआ, दूसरा खुश हुआ और तीसरा मध्यस्थ भाव मे रहा। इनका कारण क्रमश घट का नाश, मुकुट की उत्पत्ति और स्वर्ण की ध्रुवता थी ॥५६॥

दूध मात्र के व्रतवाला दही नही खाता, दही के व्रतवाला दूध नही पीता और गोरस के व्रतवाला दूध-दही दोनो नहीं खा सकता—इसलिए वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनो गुणो से युक्त है ॥६०॥



३

नय-प्रमाण

१ अर्थस्यानेकरूपस्य, धीः प्रमाण तदशधी ।
नयो धर्मान्तरापेक्षी, दुर्णयोस्तन्निराकृति ॥

प्रमाण वस्तु के अनेक धर्मों का ग्रहण करता है और नय अन्य धर्मों की अपेक्षा रखता हुआ वस्तु के एक धर्म का ग्रहण करता है तथा दुर्नय एक धर्म का मण्डन करके दूसरे धर्मों का खण्डन करता है ।

२. सप्तभङ्ग्यात्मक वाक्य, प्रमाण पूर्णबोध कृत् ।
स्यात्पदादपरोल्लेखि, वचोयच्चैकधर्मगम् ॥

—उपाध्याय यशोविजयजी

सप्तभगीरूप वाक्य स्यात्पद से युक्त होने के कारण पूर्णबोध अर्थात् वस्तु के सब धर्मों का ज्ञान करता है अत वह प्रमाण है और जो एक धर्म विशेष का उल्लेख करता है, वह नय है ।

३ सत्त नया पण्णत्ता, त जहा—नेगमे, सगहे, ववहारे, उजुसुत्ते, सद्दे, समभिरूढे, एवभूते । —स्थानाग ७।५५२

सात नय कहे हैं—(१) नैगम (२) सग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋजुसूत्र, (५) शब्द, (६) समभिरूढ, (७) एवभूत ।

★

४ निश्चय-व्यवहार नय

१. जइ जिणमय पवज्जह, ता मा ववहार-णिच्छए मुयह !
एकेण विणा छिज्जई, तित्थ अण्णेण उ ण तच्च ॥
— समयसारवृत्ति, आगमसार

यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनो मे से एक का भी त्याग न करो। व्यवहार के विना तीर्थ एव आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय के विना तत्त्व का ही नाश हो जाता है।

२. ववहारणयो भासदि, जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो, देहो य कदापि एकट्ठो ॥
—समयसारवृत्ति २७

व्यवहार नय से जीव (आत्मा) और देह एक प्रतीत होते हैं, किन्तु निश्चयदृष्टि से दोनो भिन्न है, कदापि एक नहीं है।

३. तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसणमसक्कं।
— समयसारवृत्ति ८

व्यवहार (नय) के विना परमार्थ (शुद्ध आत्मतत्त्व) का उपदेश करना अशक्य है।

४. कत्ता भोत्ता आदा, पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारो।
— नियमसार १८

आत्मा पुद्गल-कर्मों का कर्ता और भोक्ता है, यह मात्र व्यवहार-दृष्टि है।



३ नय-प्रमाण

१ अर्थस्यानेकरूपस्य, धीः प्रमाण तदशधी ।
नयो धर्मान्तरापेक्षी, दुर्णयोस्तन्निराकृति ॥

प्रमाण वस्तु के अनेक धर्मों का ग्रहण करता है और नय अन्य धर्मों की अपेक्षा रखता हुआ वस्तु के एक धर्म का ग्रहण करता है तथा दुर्नय एक धर्म का मण्डन करके दूसरे धर्मो का खण्डन करता है ।

२ सप्तभङ्ग्यात्मक वाक्यं, प्रमाण पूर्णबोध कृत् ।
स्यात्पदादपरोल्लेखि, वचोयच्चैकधर्मगम् ॥
—उपाध्याय यशोविजयजी

सप्तभगीरूप वाक्य स्यात्पद से युक्त होने के कारण पूर्णबोध अर्थात् वस्तु के सब धर्मों का ज्ञान करता है अत वह प्रमाण है और जो एक धर्म विशेष का उल्लेख करता है, वह नय है ।

३ सत्त नया पण्णत्ता, त जहा—नैगमे, सगहे, ववहारे, उजुसुत्ते, सद्दे, समभिरूढे, एवभूते । —स्थानाग ७।५५२

सात नय कहे हैं—(१) नैगम (२) सग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋजुसूत्र, (५) शब्द, (६) समभिरूढ, (७) एवभूत ।

★

४ निश्चय-व्यवहार नय

१. जइ जिणमय पवज्जह, ता मा ववहार-णिच्छए मुयह।
एकेण विणा छिज्जई, तित्थ अण्णेण उ ण तच्च॥

— समयसारवृत्ति, आगमसार

यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनो मे से एक का भी त्याग न करो। व्यवहार के विना तीर्थ एव आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय के विना तत्त्व का ही नाश हो जाता है।

२. ववहारणयो भासदि, जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो, देहो य कदापि एकट्ठो॥

—समयसारवृत्ति २७

व्यवहार नय से जीव (आत्मा) और देह एक प्रतीत होते है, किन्तु निश्चयदृष्टि से दोनो भिन्न है, कदापि एक नही है।

३. तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसणमसक्क।

— समयसारवृत्ति ८

व्यवहार (नय) के विना परमार्थ (शुद्ध आत्मतत्त्व) का उपदेश करना अशक्य है।

४ कत्ता भोत्ता आदा, पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारो।

—नियमसार १८

आत्मा पुद्गल-कर्मों का कर्ता और भोक्ता है, यह मात्र व्यवहार-दृष्टि है।

★

अबद्धं परमार्थेन, बद्धं च व्यवहारतः ।
ब्रुवाणो ब्रह्मवेदान्ती, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥४॥
ब्रुवाणा भिन्न-भिन्नार्थान्, नयभेदव्यपेक्षया ।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदाः, स्याद्वादं सार्वतन्त्रिकम् ॥५॥

—अध्यात्मोपनिषद्

न्याय-वैशेषिक एक चित्र को अनेक रूपों में परिणत मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त' का खण्डन नहीं कर सकते ॥१॥
विज्ञानवादि-बौद्ध एक आकार को अनेक आकारों से कवलित (युक्त) मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त' का खण्डन नहीं कर सकते ॥२॥
भट्ट और मुरारी के अनुयायी प्रत्येक वस्तु को सामान्य-विशेषात्मक मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त का' खण्डन नहीं कर सकते ॥३॥
ब्रह्म वेदान्ती परमार्थ से ईश्वर को बद्ध और व्यवहार से उसको अबद्ध मानते हैं, वे अनेकान्त सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकते ॥४॥
वेद भी स्याद्वाद का खण्डन नहीं कर सकते क्योंकि वे प्रत्येक अर्थ (विषय) को नयकी अपेक्षा से भिन्न और अभिन्न दोनों मानते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी मतावलम्बी स्याद्वाद को स्वीकार करते हैं ॥५॥

७ प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन स्याल्लाञ्छिता विधिनिषेधकल्पना सप्तभङ्गी ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१६

प्रश्नकर्ता के अनुरोध से एक वस्तु में अविरोधरूप से 'स्यात्' शब्दयुक्त जो विधि-निषेध की कल्पना की जाती है, उसे सप्तभंगी कहते हैं। सप्तभंगी के सात भांगे इस प्रकार हैं—

१ कथञ्चित् घट है, २ कथञ्चित् घट नही है, ३ कथचित् घट है और कथचित् घट नही है, ४ कथचित् घट अवक्तव्य है, ५ घट कथचित् है और कथचित् अवक्तव्य है, ६ घट कथचित् नही है और कथचित् अवक्तव्य है, ७ घट कथचित् है, कथचित् नही है और कथचित् अवक्तव्य है।

८ तुंगिया नगरी मे ५०० शिष्यो युक्त स्थविर पधारे। श्रावक दर्शनार्थ गए एव प्रश्न किया—
सजमेण भते कि फले ? तवे कि फले ? (भगवन् ! सयम का क्या फल है एव तप का क्या फल है ?)
स्थविर 'सजमेण अणण्हफले, तवेण वोदाणफले।
(सयम का फल अनास्रव होना है और तप का फल कर्मशुद्धि है।)
श्रावक—यदि ऐसा ही है तो साधु देवलोक में किससे उत्पन्न होते है ?
कालियपुत्त ने कहा—पूर्वतप से,
महिल ने कहा—पूर्वसयम से,
आनन्द ने कहा—पूर्वकर्म शेष रह जाने से,
काश्यप ने कहा—द्रव्यादि विषय के सग से।
भिन्न-भिन्न उत्तर सुनकर श्रावक कुछ सोच ही रहे थे कि ज्येष्ठस्थविर ने कहा—पूर्वसयम, पूर्वतप, पूर्वकर्म और सग, स्वर्ग मे उत्पन्न होने के ये चारो ही कारण है, अत चारो मुनियो का उत्तर सत्य है। मात्र अपेक्षा-भेद है। सुनकर श्रावक सतुष्ट हुए।

उपरोक्त चर्चा सुनकर गौतम ने महावीर प्रभु से पूछा, उन्होंने भी यही उत्तर दिया।

(आज यदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय एक-दूसरे का खण्डन न करके स्याद्वाददृष्टि से चिन्तन करने लग जाये तो वैर-विरोध नष्ट होकर एकता हो जाय।)

—भगवती सूत्र २।५ के आधार पर

- तीन देवो के नामाकित द्वारो से तीन मनुष्य मदिर मे गए—ब्रह्मा, विष्णु एव महेश का पृथक्-पृथक् पक्ष लेकर वाद-विवाद करने लगे। अन्त में पुजारी द्वारा (शिल्पी की कारीगरी से ही तीन रूप दीखते हैं, वस्तुतः एक ही मूर्ति है।) समझाये जाने पर शान्त हुए।
- रेल मे भिन्न-भिन्न देशो के यात्री अगूरखाना चाहते थे, लेकिन भाषा भिन्न होने से अरबी उसे एनब, तुर्की उजम, अंग्रेजी ग्रेप्स और हिन्दुस्तानी अंगूर नाम से पुकार रहा था। स्टेशन आया और सबने एक ही वस्तु (अगूर) खाई। वास्तव में भाषा की अपेक्षा से भिन्नता थी।



६ उत्सर्ग-अपवाद

१ जावइया उस्सग्गा, तावइया चेव हुंति अववाया।
जावइया अववाया, उस्सग्गा तत्तिया चेव॥

—बृहत्कल्पभाष्य ३२२

जितने उत्सर्ग (निषेधवचन) हैं, उतने ही उनके अपवाद (विधि-वचन) भी हैं। और जितने अपवाद हैं, उतने उत्सर्ग भी हैं।

२. उस्सग्गेण णिसिद्धाणि, जाणि दव्वाणि संथरे मुणिणो।
कारणजाए जाते, सव्वाणि वि ताणि कप्पंति॥

—निशीथभाष्य ५२४५ तथा बृहत्कल्पभाष्य ३३२७

उत्सर्गमार्ग में समर्थ मुनि को जिन बातों का निषेध किया गया है, विशेष कारण होने पर अपवादमार्ग में वे सब कर्तव्यरूप से विहित हैं।

३ णवि किंचि अणुण्णायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं।
एसा तेसिं आणा, कज्जे सच्चेण होयव्वं॥

—निशीथभाष्य ५२४८ तथा बृहत्कल्पभाष्य ३३३०

जिनेश्वरदेव ने न किसी कार्य की एकान्त अनुज्ञा दी है और न एकान्त निषेध ही किया है। उनकी आज्ञा यही है कि साधक जो भी करे, वह सच्चाई से, प्रामाणिकता से करे।

४ निक्कारणम्मि दोसा, पडिबधे कारणम्मि णिद्दोसा।

—निशीथभाष्य ५२८४

बिना विशिष्ट प्रयोजन के अपवाद दोषरूप है, किन्तु विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए वही निर्दोष है।

५. एगतेण निसेहो, जोगेसु न देसिओ विही वाऽपि।
दलिअ पप्प निसेहो, होज्ज विही वा जहा रोगे॥

—ओघनिर्युक्ति ५५

जिनशासन मे एकान्तरूप से किसी भी क्रिया का न तो निषेध है, और न विधान ही है। परिस्थिति को देखकर ही उनका निषेध या विधान किया जाता है, जैसा कि रोग में मे चिकित्सा के लिए।

●

सिद्धान्त

अनुभव के आधार पर ही सिद्धान्त बनते हैं।

—नायजी

सिद्धान्त सडक है, व्यक्ति उस पर चलनेवाला है। सिद्धान्त बडा क्यों ? रास्ता है। व्यक्ति बडा क्यों ? बतानेवाला है। हीरा बडा क्यों ? रत्न है। जौहरी बडा क्यों ? परीक्षक है। ऐसे ही गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र और राजा-प्रजा के विषय में भी समझना चाहिये।

जं मयं सव्वसाहूणं, तं मयं सल्लकत्तणं।

—सूत्रकृतांग १५।१८

जो सिद्धान्त सभी साधुओं द्वारा मान्य है—वही माया, निदान एवं मिथ्यादर्शनरूप शल्य को हरनेवाला है।

महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त लचीले होने आवश्यक हैं।

—लिंकन

वास्तविकता के द्वारा ही सिद्धात कार्यक्रम में परिणत हो पाते हैं।

—कूपर

मनुष्य की सच्चाई का एकमात्र प्रमाण यह है कि वह अपने सिद्धान्त पर अपना सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर रहे।

—गार्डनर

कोई भी मनुष्य महत्त्वों और उसीनयी सिद्धान्तों से पूरा माप नहीं कर पाता।

—चर्चिल

८ भुड्क्ते न केवली न स्त्री-मोक्षमाहु दिगम्बरा.।

—विवेक-विलास

दिगम्बर जैन कहते हैं कि केवलज्ञानी भोजन नही करते और स्त्री को मोक्ष नही मिलता।

९ मैं मानता हू धर्मशास्त्रो मे,
ऊंचे-ऊंचे और अच्छे विचार हैं।
धार्मिक लोग पूजा-पाठ और-
क्रियाकाण्डो मे वैसे वरकरार हैं।
लेकिन वात तो सारी-
इसी सवाल पर आकर अटक जाती है,
कि उन सिद्धान्तो पर कुर्बान-
होने के लिए कौन-कौन तैयार है ?

—'खुले आकाश' से

१०. वेद पौरुषय—

ताल्वादिजन्मा ननु वर्णवर्गो,
वर्णात्मको वेद इति स्फुट च।
पुंसश्च ताल्वादि ततः कथस्या-
दपौरुपेयोऽयमिति प्रतीति ॥

वर्णो का समूह तालु आदि से उत्पन्न होता है। वेद वर्णात्मक है—यह स्पष्ट है। तालु आदि पुरुष के होते है फिर वेद अपौरुषेय (पुरुष के वगैर उत्पन्न होनेवाले) कैसे कहे जा सकते हैं ?

✱

चारित्र

१. चयरित्तकरं चारित्तं होइ। —उत्तराध्ययन २८।३३

कर्मों के चय-राशि को रिक्त करने के कारण चारित्र कहलाता है।

२ चर्यते-प्राप्यते मोक्षोऽनेनेति चारित्रम्।

—उत्तराध्ययन २८।२ टीका

इसके द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जाता है अतः यह चारित्र कहलाता है।

३ चरिताऽर्जैव चारित्रम्। —योगसार

ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा को शुद्ध पालना ही चारित्र है।

४ चारित्तं समभावो। —पञ्चास्तिकाय १०७

समभाव ही चारित्र है।

५ सद्धावीरियसाधनं चारित्तं। —विसुद्धिमग्ग-१।२६

श्रद्धा और वीर्य (शक्ति) का साधन (स्रोत) चारित्र है।

६. तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं, तत्त्वप्रख्यापकं भवेज्ज्ञानम्।
पापक्रियानिवृत्तिश्चारित्रमुक्तं जिनेन्द्रेण॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ६१

जिनेन्द्र भगवान ने तत्त्वविषयक रुचि को सम्यग्दर्शन, तत्त्वनिरूपक विवेकज्ञान को सम्यग्ज्ञान और पापकर्म क्रिया से निवृत्ति को सम्यक्चारित्र कहा है।

७ मर्वसावद्ययोगाना, त्यागश्चारित्रमिष्यते ।

— योगशास्त्र

सब प्रकार के सावद्ययोगो का त्याग करना ही चारित्र है ।

८ चारित्र दो प्रकार से बनता है—आपकी विचारधारा से और आपके अपने समय बिताने के ढंग से ।

—जो० हावेज

९. चारित्रनिर्माण उससे होता है, जिसके लिए आप दृढता-पूर्वक खड़े होते है। सम्मान उससे मिलता है, जिसके लिए आप गिर पडते है । —बूलफोट

१०. चारित्र सम्बन्धी उन्नति का अर्थ है खुदी मे खुदी को मिटाने की तरफ बढना । —हार्टले

११. चारित्र सग (साथ) मे विकसित होता है और बुद्धि एकान्त मे । —गेटे

१२. प्रत्येक मनुष्य के चरित्र के तीनरूप होते है—एक तो जैसा कि वह स्वय समझता है, दूसरा जैसा कि उसे दूसरे व्यक्ति समझते है और तीसरा जैसा कि वह वास्तव मे है । —अल्फान्सोकर

१३ चारित्र के लिए उतनी कोई घातक चीज नही, जितने अपूर्ण कार्य । —इ० ला० जार्ज

१४. चारित्र एक श्वेत कागज है जो एक बार कलकित होने पर पूर्ववत् उज्ज्वल होना कठिन है ।

६

चारित्र का महत्त्व

१ कि मुत्तम ? सच्चरित यदस्ति । —शंकर-प्रश्नोत्तरी

क्या वस्तु उत्तम है ? जो सच्चरित्र है, वही ।

२ बुद्धि से चारित्र बढ़कर है । —इमर्सन

३ चारित्र एक ऐसा हीरा है जो अन्य सभी पाषाणखंडों को काट डालता है । —बारटल

४ जिनेश्वरैस्तद् गदितं चरित्रं, समस्तकर्मक्षयहेतुभूतम् ।

—सुभाषितरत्नसन्दोह

चारित्र समस्त कर्मों का क्षय करनेवाला है—ऐसा जिनेश्वर देवों ने कहा है ।

५ चारित्र वृक्ष है और प्रतिष्ठा छाया ।

—इब्राहिम लिंकन

६. जीवन का लक्ष्य सुख नहीं, चारित्र है । —बीचर

७. चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो ॥

—प्रवचनसार १।७

चारित्र ही वास्तव में धर्म है, और जो धर्म है, वह समत्व है । मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का अपना शुद्ध परिणमन ही समत्व है ।

८. मनुष्य की सफलता-असफलता का द्योतक चारित्र ही है यदि वह सफल है तो जीवन सफल है अन्यथा असफल।

—रोमो

९ कुलीनमकुलीन वा, वीर पुरुपमानिनम,
चारित्रमेव व्याख्याति, शुचि वा यदि वा शुचिम्।

—वाल्मीकिरामायण २।१०६।४

मनुष्य के चारित्र (आचरण) मे ही पता चलता है कि यह कुलीन है या कुलहीन, सच्चा वीर है या यो ही डींगे मारने-वाला तथा पवित्र है या अपवित्र।

१०. सम्यक्चारित्र के विना इन्सान विना छत का मकान है।

११. चारित्र के विना जीवन रोगन की हुई खोखली लट्ठी है।

१२. धर्म, उपदेश, कविता, चित्र, नाटक आदि किसी भी चीज का विना चारित्र के मूल्याकन नही होता।

—जे० जी० हालेण्ड

१३. शिक्षा नही अपितु चारित्र ही मनुष्य की सर्वोच्च आवश्यकता है।

—स्पेन्सर

१४ स पुमान् पटावृतोऽपि नग्न एव,
यस्य नास्तिसच्चारित्रमावरणम्।
स नग्नोऽप्यनग्न एव,
यो भूपित सच्चारित्रेण॥

—नीतिवाक्यामृत २६।५१-५२

• जो सदाचाररूप वस्त्र से अलंकृत नहीं है, वह सुन्दर वस्त्रों से वेष्टित होने पर भी नग्न ही है। सदाचार से विभूषित शिष्ट-पुरुष नग्न होने पर भी नग्न नहीं गिना जाता।

१५ चारित्र शुद्धिस्तु मता दुरापा।

चारित्र की शुद्धि दुष्प्राप्य है।

★

१० ज्ञान के साथ चारित्र आवश्यक

१ विना चारित्र का ज्ञान शीशे की आंख के समान केवल दिखाने के लिये है। —स्पिनॉक

२. चारित्रहीन-बौद्धिकज्ञान सुगन्धित शव के समान है। —गांधी

३ No Knowledge In power Unless put in-to Action.
नो नॉलिज इन पावर अनलेस पुट इन-टु ऐक्शन। —अंग्रेजी कहावत

क्रियाशून्य ज्ञान शक्तिशाली नहीं है।

४. सौ रुपयो की नौली मे निन्नानवे रुपये चारित्र है और एक रुपया ज्ञान है। —श्रीकालूगणी

५ सुवहु पि सुयमहीय, किं काही चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जहा पलिता, दीवसयसहस्स - कोडीवि ॥ —विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११५२

चारित्रहीन पुरुष को बहुत से शास्त्रों का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है? क्या लाखों दीपकों का जलना भी कहीं अंधे को देखने मे सहायक हो सकता है?

६. क्रियाविहीनाः खरवद्वहन्ति। —सुश्रुत

क्रिया-चारित्रहीन व्यक्ति गदहे के समान मात्र ज्ञान का बोझा ढोनेवाला है।

७ जहा खरो चदणभारवाही, भारस्स भागी न हु चदणस्स,
एव खु नाणी चरणेण हीणो, भारस्स भागी न हु सुग्गईए।

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११५८

जैसे चन्दन का भार ढोनेवाला गदहा केवल भार का ही भागी है। चन्दन की शीतलता उसे नही मिल सकती। ऐसे ही चारित्रहीन ज्ञानी का ज्ञान केवल भाररूप है। वह सुगति का अधिकारी नही होता।



११ चारित्र की रक्षा

१. जाइमरण परिन्नाय, चरे सकमणे दढे।

—आचाराग २।३

जन्म-मरण के स्वरूप को भलीभाँति समझकर चारित्र मे दृढ होकर विचरना चाहिए।

२. वृत्त यत्नेन सरक्षेद्, वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्तत क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हत.॥

— विदुरनीति ४।१३०

यत्नपूर्वक चारित्र की रक्षा करो, धन तो आता है, चला जाता है। धनहीन व्यक्ति वास्तव मे क्षीण नही है, किन्तु जो चारित्र से क्षीण हो गया, वह तो सचमुच ही मर गया।

३. If wealth is lost nothing is lost
If health is lost something is lost.
If chractor is lost everything is lost
इफ वैल्थ इज लोस्ट नथिंग इज लोस्ट।
इफ हैल्थ इज लोस्ट समथिंग इज लोस्ट।
इफ करेक्टर इज लोस्ट एवरीथिंग इज लोस्ट।

—अंग्रेजी कहावत

धन खोया कुछ भी नही खोया, तन खोया कुछ खोया।
अगर खो दिया सच्चरित्र को, तो धन! सब कुछ खोया॥

—दोहा-सदोह

४ ऊँचे गिरि से जो गिरे, मरे एक ही वार।
चरित्र गिरि मे जो गिरे, बिगडे जन्म हजार ॥

—आचार्य उमाशंकर

५ प्रत्यह प्रत्यवेक्षेत, नरश्चरितमात्मन ।
किं नु मेपशुभिस्तुल्य, किं नु सत्पुरुषैरिति ॥

—शार्ङ्गधर

मनुष्य को प्रतिदिन अपना आचरण देखना चाहिए और सोचना चाहिए कि मेरा आचरण पशुओ के समान कितना है और सत्पुरुषो के समान कितना है ?

६ मा जाति पुच्छ, चरण च पुच्छ।
कट्ठाहवे जायति जातवेदो ॥

—सयुत्तनिकाय १।७।६

जाति मत पूछो, आचरण (कर्म) पूछो। लकडी मे भी आग पैदा हो जाती है।

७ क्रियैव फलदा पुसां, न ज्ञानं फलद मतम्।
यत. स्त्री-भक्ष्य-भोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखभाग् भवेत् ॥

वास्तव मे क्रिया ही फल देनेवाली है, ज्ञान नही. क्योकि स्त्री, भोजन और भोग का जानकार भी मात्र ज्ञान से सुखी नही होता, उसे क्रिया करनी ही पडती है।

८. शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तु क्रियावान् पुरुष स विद्वान्।
सुचिन्तित चौषधमातुराणा,
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ॥

शास्त्र पढकर भी वे मूर्ख है, जो तदनुसार क्रिया (चारित्र) का अनुसरण नही करते। वास्तव मे जो ज्ञानपूर्वक क्रिया करता है, वही विद्वान् है। औषधि के चिन्तन मात्र से रोगियो का रोग नही मिटता, उसका सेवन करना जरूरी है।

९. गति विना पथज्ञोपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम्।

गन्तव्य स्थान की ओर गमन किये विना मार्गज्ञाता भी मन चाहे शहर मे नही पहुंच सकता, वैसे ही क्रिया-चारित्र के बिना मनुष्य केवल ज्ञान से ही मुक्ति नही पा सकता।

१० नाविरतो दुश्चरितान्, नाशान्तो नासमाहित.।
नाशान्तमनसो वापि, प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

—कठोपनिषद् १।२।१४

जो बुरे आचरणो से नही हटा है, जो अशान्त (उग्र) है, असमाधियुक्त-अशान्तमनवाला है, वह केवल प्रज्ञान-बुद्धिवाद से इस आत्मतत्त्व को नही पा सकता।

११ चरणगुणविप्पहीणो, वुड्डइ सुबहुपि जाणतो।

—आवश्यकनिर्युक्ति ९७

जो साधक चारित्र के गुण से हीन है, वह बहुत से शास्त्र पढ लेने पर भी संसार समुद्र मे डूब जाता है।

१२ देशोन चौदहपूर्वधारी मुनि भी चारित्र से हीन होकर नरक-निगोद मे चले जाते है और मात्र अष्ट प्रवचन-माता के आराधक मुनि चारित्र के बल से मुक्त हो जाते है। — जैनशास्त्र

१३. जानन्ति तत्त्व प्रभवन्ति कर्तुं,
ते केऽपि लोके विरला मनुष्या.।

—हृदयप्रदीप

तत्त्व को जैसा जानते हैं, उसी प्रकार आचरण कर सकनेवाले व्यक्ति विरले है।

१४ सुननेवाले करोडो है, सुनानेवाले लाखो है, समझनेवाले हजारो है, किन्तु समझे मुताबिक आचरण करनेवाले विरले ही है।

१५ आज धर्म का मात्र लेवल है। सील मोहर कायम रहते हुए भी माल गायब है।



त्याग के भेद

१. नियतस्य तु सन्यासः, कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्याग-स्तामसः परिकीर्तितः ॥७॥
दुःखमित्येव यत्कर्म, कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं, नैव त्यागफलं लभेत् ॥८॥
कार्यमित्येव यत्कर्म, नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव, स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

—गीता अध्याय १८

शास्त्रोक्त विधि से निश्चित जिस कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है। मोहवश उस कर्म को छोड़ देना तामसत्याग कहा गया है। ॥७॥

जो कर्म है वह सब दुःखरूप ही है ऐसे सोचकर शारीरिक-क्लेश के भय से जो व्यक्ति कर्मों का त्याग करता है, वह राजस त्याग है। त्याग करने पर भी उसका फल नहीं मिलता ॥८॥
आसक्ति एवं फल का त्याग करते हुए मात्र कर्तव्य समझकर जो शास्त्रोक्तविधि से निश्चित कर्म किया जाता है, वह सात्त्विकत्याग है ॥९॥

२. ण हि णिरवेक्खो चागो,
ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी ।
अविसुद्धस्स हि चित्ते,
कहं णु कम्मक्खओ होदि ॥

—प्रवचनसारोद्धार ३।२०

जब तक निरपेक्ष त्याग नहीं होता, तब तक साधक की चित्त-शुद्धि नहीं होती और जब तक चित्तशुद्धि (उपयोग की निर्मलता) नहीं होती, तब तक कर्मक्षय कैसे हो सकता है ?

३ बाहिरचाओ विहलो, अब्भतरगंथजुत्तस्स ।

—भावपाहुड १३

जिसके आभ्यन्तर में ग्रन्थि (परिग्रह) है, उसका बाह्यत्याग व्यर्थ है ।



५ पचविहे पच्चक्खाणे पणत्ते, त जहा—(१) सद्दहणसुद्धे, (२) विणयसुद्धे, (३) अणुभासणासुद्धे, (४) अणुपालणा सुद्धे, (५) भावसुद्धे ।
—स्थानाग ५।३

प्रत्याख्यान पांच प्रकार का कहा है—

(१) श्रद्धानशुद्ध—प्रत्याख्यान मे पूरी पूरी श्रद्धा रखना ।

(२) विनयशुद्ध—प्रत्याख्यान गुरु के सम्मुख विनयपूर्वक करना ।

(३) अनुभाषणाशुद्ध—गुरु के पीछे से प्रत्याख्यान का पाठ शुद्धरूप मे स्पष्ट बोलना ।

(४) अनुपालनाशुद्ध—सकट के समय प्रत्याख्यान का शुद्ध पालन करना तथा विपत्तिकाल मे भी उसे नही तोडना ।

(५) भावशुद्ध – प्रत्याख्यान के प्रति शुद्धभाव रखना, दूषित-भाव न होने देना ।

६ दसविहे पच्चक्खाणे पणत्ते, तं जहा—
अणागय-मइक्कत, कोडीसहिय नियटिय चेव ।
सागामणागार, परिमाणकड निरवसेसे ।
सकेय चेव अद्धाए, पच्चक्खाण भवे दसहा ॥
—स्थानाग १०।७४८ तथा भगवती ७।२

दस प्रत्याख्यान कहे हैं—
(१) अनागतप्रत्याख्यान, (२) अतिक्रान्तप्रत्याख्यान, (३) कोटिसहितप्रत्याख्यान, (४) नियन्त्रितप्रत्याख्यान, (५) सागारप्रत्याख्यान, (६) अनागारप्रत्याख्यान, (७) परिमाणकृतप्रत्याख्यान, (८) निरवशेषप्रत्याख्यान, (९) संकेतप्रत्याख्यान, (१०) अद्धाप्रत्याख्यान ।

७. णमुक्कार पोरसीए, पुरिमड्ढेगासणेगट्ठाणे य ।
आयंबिले भत्तट्ठे, चरमे य अभिग्गहे विगइ ॥
—आवश्यकनिर्युक्ति ६।१५९७

काल की अपेक्षा से दस प्रत्याख्यान—

(१) नमुक्कारसी, (२) पोरुषी, (३) पुरिमार्ध, (४) एकासन, (५) एकस्थान, (६) आचामाम्ल, (७) उपवास, (८) चरम-प्रत्याख्यान, (९) अभिग्रह, (१०) निर्विकृति (नीवी) ।

★

१७ आचार (आचरण)

१. शीलवृत्तफलं श्रुतम् । —महाभारत, सभापर्व ५।१२३

ज्ञान का फल शील एवं आचार है।

२. सारो परूवणाए चरण, तस्स वि य होइ निव्वाण ।

—आचारांगनिर्युक्ति, गाथा १७

परूपणा का सार है—आचरण और आचरण का सार (अन्तिमफल) है—निर्वाण।

३. अगाण किं सारो ? आयारो ।

—आचारांगनिर्युक्ति गाथा १६

जिनवाणी (अंगसाहित्य) का क्या सार है ? 'आचार'!

४ जीवाहारो भण्णइ आयारो ।

—दशवैकालिक निर्युक्ति २१५

तप-संयमरूप आचार का मूल आधार आत्मा (आत्मश्रद्धा) ही है।

५. आचारः प्रथमो धर्मो, नृणां श्रेयस्करो महान् ।

—यजुर्वेद, मनुस्मृति १।१३८

उत्तम आचार ही सबसे पहला धर्म है और मनुष्यों के लिए महानकल्याणकारी है।

६. आचारलक्षणो धर्म, सन्तश्चारित्रलक्षणा. ।
साधूनां च यथावृत्त-मेतदाचारलक्षणम् ॥

—महाभारत अनुशासनपर्व, अध्याय १०४

धर्म का स्वरूप आचार है। सदाचार से युक्त पुरुष ही सन्त है। सतो का जो जीवनक्रम है, वही आचार है।

७ आचाराल्लभते ह्यायु-राचारादीप्सिता प्रजा ।
आचाराद्धनमक्षय्य-माचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

—मनुस्मृति ४।१५६

उत्तम आचार से पूर्णआयु इच्छित सन्तान और अक्षयधन प्राप्त होता है एवं कुलक्षणों का नाश होता है।

८. सदाचार के तीन फल हैं—

(१) लोक मे कीर्ति बढ़ती है, (२) सम्पत्ति की वृद्धि होती है, (३) मरने के बाद सुगति मिलती है।

९ आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ।
सम्भ्रम स्नेहमाख्याति, देशमाख्याति भाषणम् ॥

आचार जाति का सूचक बतलाता है और भोजन शरीर (स्वास्थ्य) बतलाता है। सम्भ्रम स्नेह का और भाषण देश का परिचय देता है।

१० मनुष्यों के कर्म उनके विचारों के सर्वोत्तम परिचायक हैं।

सदाचार-दुराचार—

११ पञ्चविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—
ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार।

—स्थानांग [illegible]

पांच प्रकार का आचार कहा है—

(१) ज्ञानाचार—ज्ञान को विधियुक्त पढ़ना।

(२) दर्शनाचार—शंका आदि दोषों को त्यागकर शुद्ध सम्यक्त्व का आराधन करना।

(३) चारित्राचार—समिति-गुप्ति का शुद्ध पालन करना।

(४) तपआचार—आत्मकल्याण के लिए बारह प्रकार की तपस्या करना।

(५) वीर्याचार—धार्मिक कार्यों में शक्ति लगाना।

१२. **सदाचार-दुराचार—**

सदाचार सोना है, दुराचार कथीर (रांगा) है।
सदाचार स्वर्ग की सड़क है, दुराचार नरक का द्वार है।
सदाचार सुख का खजाना है, दुराचार दुःख का पहाड़ है।
सदाचार सच्चा शृंगार है, दुराचार जाज्वल्यमान अंगार है।
सदाचार सच्ची श्रीमत्ता है, दुराचार दरिद्रता है।
सदाचार सच्चा भूषण है, दुराचार भारी दूषण है।
सदाचार सच्ची विद्वत्ता है, दुराचार निरीमूर्खता है।
सदाचार सच्चा मित्र है, दुराचार कट्टर शत्रु है।

—एक विचारक

१३. सदाचार के बिना जीवन विटामिनशून्य भोजन है।

१४. सुना है—बूढ़े सत्य ने अपने जवान और इकलौते बेटे सदाचार की आकस्मिक मौत से दुखी होकर आत्महत्या करली है।

और यह भी सुना है कि बड़े सवेरे ही राजभवन में एक शपथग्रहणसमारोह में जवान और लोकप्रिय असत्य के लाड़ले सपूत भ्रष्टाचार ने राष्ट्र के प्रति पूरी ईमानदारी बरतने की शपथ ले ली है।

—श्री रविदिवाकर



पांच प्रकार का आचार कहा है—

(१) ज्ञानाचार—ज्ञान को विधियुक्त पढना।

(२) दर्शनाचार—शका आदि दोषों को त्यागकर शुद्ध सम्यक्त्व का आराधन करना।

(३) चारित्राचार—समिति-गुप्ति का शुद्ध पालन करना।

(४) तपआचार—आत्मकल्याण के लिए बारह प्रकार की तपस्या करना।

(५) वीर्याचार—धार्मिक कार्यो मे शक्ति लगाना।

१२. सदाचार-दुराचार—

सदाचार सोना है, दुराचार कथीर (रांगा) है।
सदाचार स्वर्ग की सडक है, दुराचार नरक का द्वार है।
सदाचार सुख का खजाना है, दुराचार दु ख का पहाड है।
सदाचार सच्चा शृगार है, दुराचार जाज्वल्यमान अंगार है।
सदाचार सच्ची श्रीमत्ता है, दुराचार दरिद्रता है।
सदाचार सच्चा भूषण है, दुराचार भारी दूषण है।
सदाचार सच्ची विद्वत्ता है, दुराचार निरीमूर्खता है।
सदाचार सच्चा मित्र है, दुराचार कट्टर शत्रु है।

—एक विचारक

१३. सदाचार के बिना जीवन विटामिनशून्य भोजन है।

१४. सुना है—बूढे सत्य ने अपने जवान और उपलीने बेटे सदाचार की आकस्मिक मौत से दुखी होकर आत्म-हत्या करली है।

और यह भी सुना है कि बड़े सवेरे ही राजभवन में एक शपथग्रहणसमारोह में जवान और लोकप्रिय असत्य के लाडले सपूत भ्रष्टाचार ने राष्ट्र के प्रति पूरी ईमानदारी बरतने की शपथ ले ली है।

—श्री रविदिवाकर



१८ आचरण विना ज्ञान

१. अध्यात्मशास्त्र की वडी-वडी वाते वनानेवाले वीडी-सिगरेट गुम होते ही लाल-पीले होने लगते है, भगवती के भागे अंगुलियो पर गिन लेनेवाले श्रावक हराम का पैसा हजम कर जाते हैं, समयसार का निचोड निकालनेवाले भाई भाइयो से लडते नही शरमाते। वेद, उपनिपद्, गीता, पुराण, कुरान व वाइविल के ज्ञाता रडियो मे भटकने से वाज नही आते। अव वतलाइए कि आचरण के सुधरे विना ज्ञान का क्या मूल्य ?

२. जो कुछ नही करता, वह कुछ नही जानता, अपने सिद्धान्तो को परखो कि वे अग्निपरीक्षा में खरे उतरते हैं या नही।

—एलोयासिस

१६ आचारवान्

१. अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा, ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा, ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ।

—मनुस्मृति १२।१०३

अज्ञों से ग्रन्थ पढ़नेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे ग्रन्थों को धारनेवाले (याद रखनेवाले) श्रेष्ठ हैं, उनसे ग्रन्थों के मर्म को जाननेवाले ज्ञानी श्रेष्ठ हैं और ज्ञानियों से तदनुकूल आचरण करनेवाले श्रेष्ठ होते हैं।

२. जो नेक अमल करेगा, वह अपनी राह सवारेगा।

—कुरान० ३०।४४

३ तिष्ठति प्रकृताचारे सैव आर्य इति स्मृतः ।

जो प्राकृतिक आचरण का अनुसरण करता है, वही आर्य माना जाता है।

४ [illegible]।

[illegible]

५ जो सीखो उसे अमल में लाओ।

—[illegible]

६. जिसने ज्ञान को आचरण मे उतार लिया, उसने ईश्वर को मूर्तिमान कर लिया। —विनोबा

७ कौरवो-पाण्डवो को पढाते समय द्रोणाचार्य ने क्षमाकुरु यह पाठ पढाया। सबने याद करके सुना दिया। युधिष्ठिर ने कहा—अभी याद नही हुआ। गुरु ने धमकाया। दूसरे दिन फिर पूछा। वही उत्तर मिला। द्रोणाचार्य ने उन्हे खूब पीटा। इस प्रकार कई दिन मार खाते-खाते याद हुआ। गुरु के पूछने पर धर्मपुत्र ने रहस्य खोला कि जब तक क्रोध आता रहा तब तक याद हुआ यह कैसे कहूँ ?

८. चार वेदो के ज्ञाता की अपेक्षा उनको आचरण मे लानेवाला बडा है। —एक विचारक

६ करनी करै सो पूत हमारा, कथनी करै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहणी के साथी॥
—कबीर

१०. गांधी जी जब लन्दन मे रहते थे, एक पादरी ने ईसाई बनाने की नीयत से उन्हे भोजन का निमन्त्रण देता तथा उनके लिए खाना अलग बनवाया करता। पादरी के बच्चो ने पूछा—खाना अलग क्यो बनाया जाता है ? पादरी ने कहा - ये अहिंसक है, मांस नही खाते, इसलिए खाना अलग बनाया जाता है। बच्चो ने फिर प्रश्न किया—ये मांस क्यो नही खाते ? तब पादरी

ने गांधीजी की जीवनचर्या एवं उनकी अहिंसा का विवेचन किया। बच्चे उनसे काफी प्रभावित हुए और कहने लगे, पिताजी आज से हम लोग भी मांस नहीं खाएँगे। पादरी महोदय घबराए और उस दिन से गांधीजी को निमन्त्रण देना ही बन्द कर दिया।



२० आचारहीन

१. आचारहीनं न पुनन्ति वेदा ।

—वाशिष्ठस्मृति-६।३

आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नही कर सकते ।

२. अनाचरतो मनोरथा. स्वप्नराज्यसमाः ।

—नीतिवाक्यामृत

आचरण नही करनेवालो के मनोरथ स्वप्नराज्य के समान है।

३ विचार की भूलवाला मूर्ख है तो आचार की भूलवाला दुष्ट (पापी) है ।

—एक विचारक

४ चन्दन जन परिचय वढा, त्यो-त्यो वढा विकार ।
हानि पडी आचार मे, ज्यो-ज्यो वढा प्रचार ।।

५. उसका इरादा अच्छा है, यह व्यर्थ है—यदि वह अच्छा काम न करे ।

६ मन राजा सो, करम कमेडी सो ।

—राजस्थानी कहावत

२१ कथन के समान आचरण आवश्यक

१. यथा वाचि तथा क्रियायाम् ।
कथनी के समान करनी भी होनी चाहिए ।

२ कहनी करनी एकसार बना, तुलसी तेरापथ पाएँ हम ।
—आचार्य तुलसी

२. करणी हू रहणी नहीं, रहणी का पर दूर ।
कहणी तो काया करे, चालो नेद मजूर ॥
—राजस्थानी दोहा

३ हमें कहना आता है, करना नहीं आता ।
हमें बोलना आता है, चलना नहीं आता ।

४ यह कितनी गलत बात है कि हम बैठे रहें और दूसरों को काम करने की सलाह दें । —गांधी

५ [illegible] ।
[illegible] ॥
—[illegible]

[illegible]

६ [illegible]
[illegible] । —[illegible]

७ है विरले नर या जग में,
जो कहे सो करे न, करे सो कहे ना । —ग्वाल कवि

८ ससार मे तीन प्रकार के पुरुष होते है—
(१) पाटल (कटहल) सदृश, जो केवल फलते है ।
(२) रसाल (आम्र) सदृश, जो फूलते और फलते है ।
(३) पनस (आक) सदृश, जो केवल फूलते है ।
अर्थात् एक वे मनुष्य जो कहते नही, करते है । दूसरे कहते है और करते भी हैं । तीसरे केवल कहते है, करते नही । —रामचरितमानस

६. कहणी मीठी खाड सी, करनी विष सम होय ।
कहणी सी करणी हुए, तो विष ही अमृत होय ॥
—राजस्थानी दोहा

१० शब्द पृथ्वी की पुत्रियाँ हैं और कार्य स्वर्ग के पुत्र ।
—सेमुएल जानसन

११ यदि वयस्कलोग उन उपदेशो पर अमल करे जो वे बच्चो को देते है, तो दुनिया अगले सोमवार को ही स्वर्गतुल्य बन जाए । —आर० विग

१२ न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवार्तया ।
न गच्छति विना पान, व्याधिरौषधिशब्दत ॥
—विवेकचूडामणि

दीपक की बात करने से अधेरा नही मिटता और औषधि का पान किए बिना औषधि शब्द के उच्चारण करने से रोग नही जाता ।

१३ मिसरी-मिसरी कह्यां स्यूं मुंह मीठो को हुवै नी ।

—राजस्थानी कहावत

१४. लड्डू की बातों से मुंह मीठा नहीं होता, कम्बल की बातों से सर्दी नहीं उतरती, व्यापार की बातों से लखपती नहीं बना जाता, विवाह की बातों से बहू घर नहीं आती, राज्य की बातों से राज्य नहीं मिलता, विद्या की बातों से विद्वान् नहीं बना जाता। व्रत की बातों से श्रावक नहीं होता अपितु तदनुसार क्रिया करने से इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है । —एक विचारक

१५ Fine word butter no Parsnips

फाइन वर्ड्स बटर नो पार्सनिप्स ।

—अंग्रेजी कहावत

मात्र बातों से पेट नहीं भरता ।

१६ [illegible] दूर्गी बातों से [illegible],
खली पेरने से न निकलता तेल ।
न बातें बनाने से [illegible] ?
है बातें जिन्होंने से निकले न [illegible] ।
अमल के मुताबिक किया जो मुदाम,
वे दुनिया के दरमियां हो, नामों में नाम ॥

—उर्दू शेर



शील

१. सील विसयविरागो । —शीलपाहुड ४०

इन्द्रियों के विषय से विरक्त रहना शील है ।

२ सिरट्ठो सीलट्ठो, सीतलट्ठो सीलट्ठो ।

—विसुद्धिमग्गो १।१९

शिरार्थ (सिर के समान उत्तम होना) शील का अर्थ है । शीतलार्थ (शीतल-शान्त होना) शील का अर्थ है ।

३. सील सासनस्स आदि । —विसुद्धिमग्गो १।७

शील धर्म का आरम्भ है, आदि है ।

४. सील मोक्खस्स सोवाण । —शीलपाहुड २०

शील (सदाचार) मोक्ष का सोपान है ।

५ सीलगन्ध समो गधो, कुतो नाम भविस्सति ।
यो सम अनुवाते च, पटिवाते च वायति ॥

—विसुद्धिमग्गो १।२४

शील की गन्ध के समान दूसरी गंध कहाँ है जो पवन की अनुकूल और प्रतिकूल दिशाओं में एक समान बहती है ।

६. सील बल अप्पटिम, सील आवुधमुत्तम ।
सीलमाभरणं सेट्ठ, सील कवचमब्भुत ॥

—थेरगाथा १२।६१४

शील श्रेष्ठ आभूषण है और शील रक्षा करनेवाला अद्भुत कवच है ।

७ हिरोत्तप्पे हि सति सील उप्पज्जति चेव-तिट्ठति च।
असति नेव उप्पज्जति, न तिट्ठति।

—विसुद्धिमग्गो १।२२

लज्जा और संकोच होने पर ही शील उत्पन्न होता है और टिकता है। लज्जा और संकोच न होने पर शील न तो उत्पन्न होता है और न टिकता है।

८ सीलपरिधोता पञ्ञा, पञ्ञा परिधोत सील।
यत्थ सील तत्थ पञ्ञा, यत्थ पञ्ञा तत्थ सील॥

—दीघनिकाय १।४।४

शील से प्रज्ञा (ज्ञान) प्रक्षालित होती है, प्रज्ञा से शील (आचार) प्रक्षालित होता है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है जहाँ प्रज्ञा है वहाँ शील है।

९ जीवदया-दम-सच्चं, अचोरियं बंभचेर-संतोसे।
सम्मद्दंसण-णाणे, तओ य सीलस्स परिवारो॥

— शीलपाहुड १९

जीव दया, दम, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तप—ये सब शील के परिवार हैं अर्थात् शील के अंग हैं।

१० किकीव अण्डं चमरीव वालधिं,
पियंव पुत्तं नयनंव एककं।
तथेव सीलं अनुरक्खमाना
सुपेसला होथ सदा सगारवा। —विसुद्धिमग्गो १।९८

[illegible]

के साथ रक्षा करता है, वैसे ही अपने शील की अविच्छिन्न-रूप से रक्षा करते हुए उसके प्रति सदा गौरव की भावना रखनी चाहिए।

११. न सतसति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया।

—उत्तराध्ययन ५।२६

ज्ञानी और सदाचारी आत्माएं मरणकाल में भी त्रस्त अर्थात् भयाक्रान्त नहीं होतीं।

१२ सील-गुणवज्जिदाण, णिरत्थय माणुस जम्म।

—शीलपाहुड १५

शीलगुण से रहित व्यक्ति का मनुष्यजन्म पाना निरर्थक ही है।

१३ सम्पन्नसीला, भिक्खवे विहरथ।

—मज्झिमनिकाय १।६।१

भिक्षुओ! शील सम्पन्न होकर विचरो!



१ व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

—यजुर्वेद १९।३०

व्रत (आचरण) से मनुष्य को दीक्षा अर्थात् उच्च जीवन की योग्यता प्राप्त होती है। दीक्षा से दक्षिणा यानी प्रयत्न की सफलता मिलती है। दक्षिणा से अपने जीवन के आदर्शों में श्रद्धा होती है। और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

२ भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ।

— उत्तराध्ययन ५।२२

साधु हो, चाहे गृहस्थ हो, अगर व्रतधारी स्वर्ग में जाता है।

३. व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया ।

व्रत की शुद्ध पालना ही सज्जनों का शृंगार है।

४. व्रतों की विधि दुष्कर होने पर भी उसे पालने का प्रयत्न करे।

५ व्रतों के अनुष्ठानों में भी व्रतों की विशेष सम्भाल रखो, [illegible]

६ [illegible]

७ टूटने के भय से व्रत मत छोड़ो!

[illegible]

के साथ रक्षा करता है, वैसे ही अपने शील की अविच्छिन्न-रूप से रक्षा करते हुए उसके प्रति सदा गौरव की भावना रखनी चाहिए।

११. न सतसति मरणते, सीलवता बहुस्सुया।

—उत्तराध्ययन ५।२६

ज्ञानी और सदाचारी आत्माए मरणकाल मे भी त्रस्त अर्थात् भयाक्रान्त नही होती।

१२ सील-गुणवज्जिदाण, णिरत्थय माणुस जम्म।

—शीलपाहुड १५

शीलगुण से रहित व्यक्ति का मनुष्यजन्म पाना निरर्थक ही है।

१३ सम्पन्नसीला, भिक्खवे विहरथ।

—मज्झिमनिकाय १।६।१

भिक्षुओ! शील सम्पन्न होकर विचरो!



१. व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

—यजुर्वेद १९।३०

व्रत (आचरण) से मनुष्य को दीक्षा अर्थात् उच्च जीवन की योग्यता प्राप्त होती है। दीक्षा से दक्षिणा यानी प्रयत्न की सफलता मिलती है। दक्षिणा से अपने जीवन के आदर्शों में श्रद्धा होती है। और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

२ भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ।

—उत्तराध्ययन ५।२२

साधु हो, चाहे गृहस्थ हो, सुव्रती आत्मा स्वर्ग में जाता है।

३. व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया ।

व्रतों की सुरक्षा करना ही सज्जनों का शृंगार है।

४ व्रतों की विधि दुष्कर होने पर भी उन्हें पालने का प्रयत्न करे।

५ सन्तों के आभूषणों में भी व्रतों की विशेष महत्ता रही, [illegible]

६ [illegible]

७ टूटने के भय से व्रत मत छोड़ो।
[illegible]

भिक्षुओ के भय से भोजन बनाना नही छोडते, टिड्डियो के भय से खेती करना नही छोडते, दुर्घटना के भय से मोटर या रेल आदि की सवारी करना नही छोडते, नुकसान के भय से व्यापार करना नही छोडते तथा मक्खियो के भय से दूध पीना नही छोडते, वैसे ही टूटने के भय से व्रत लेना भी नही छोड़ना चाहिए, क्योकि टूटे इजन, फूटे बर्तन एव फटे वस्त्र की तरह दूपित व्रत भी प्रायश्चित्त द्वारा पुन· निर्मल हो सकते हैं।

८ सर्वप्रयत्नेन चातुर्मासे व्रती भवेत्। —भविष्योत्तरपुराण

चतुर्मास के समय सभी प्रकार के प्रयत्नो से कुछ न कुछ व्रत-नियम अवश्य करना चाहिए।

६ गिहिवासे वि सुव्वए। —उत्तराध्ययन ५।२४

धर्मशिक्षासम्पन्न गृहस्थ गृहवास मे भी सुव्रती है।

१० एकाद/ न का ढोग—

(क) भोर उठ स्नान कियो, सेर पक्को दूध पियो,
सैकडो सिघाडे खाये, चित्त तो सवादी है।
दोपहरी मे भाग छानी, पाव चोनी सेर पानी,
सोलह शक्करकदी खाई, खोद्योडी नवादी है।
पाव पक्की बरफी खाई, पाव पक्का पेडा खाया,
बीसो अमरूद खाये, आई नहीं बादी है।
कहे 'ब्रह्मदत्त' ऐसो व्रत नित्य होय यारो।
कहने की एकादशी पै द्वादशी की दादी है॥

(ख) गिरि तें फुहारा छाय झिलमिल निर्झर छाय,
        रंग तें सिंगारो छाय मोतिन को मनावती है।
भूरपन छहछोर, बरसे उमड़ी ह,
        कलानिद छाय, खूब लौटे पहुँचे गावती है।
भान छलकुना छाय, नाचड़ी नचीर छाय,
        झूली डोर मोपती में खूब प्रीति गावती है।
नान तो लाहिर जल्स, कीन्हों भरपूर भार,
        कहते की एकादशी है हावकी के कारी है॥

—न पारसे रत्नाकर



२४ महाव्रत

१. पच महव्वया पण्णत्ता, त जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण । जाव सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥

—स्थानाग ५।१।३८४

भगवान ने पाँच महाव्रत कहे हैं—(१) सर्वथा जीव-हिंसा से विरत होना, (२) सर्वथा झूठ से विरत होना, (३) सर्वथा चोरी से विरत होना, (४) सर्वथा अब्रह्मचर्य से विरत होना, (५) सर्वथा परिग्रह से विरत होना ।

२ अहिंसा-सत्याऽस्तेय-ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमा ।

—पातंजल-योगदर्शन २।३०

(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह - ये पाच यम हैं ।

३. एते जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्ना ।
सार्वभौमा महाव्रतम् ॥

—पातंजल-योगदर्शन २।३१

ये यम जाति, देश, काल, समय के अपवाद से रहित हो और सभी अवस्थाओं मे पाले जायें तो महाव्रत कहलाते है ।

४ इच्चेइयाइं पच महव्वयाइ राइभोयणवेरमणछट्ठाइ ।
अत्तहियट्ठयाए उवसपज्जित्ताणं विहरामि ॥

—दशवैकालिक ४

ये पाँच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन-व्रत इनको आत्मा के हित के लिए धारण करके विचरता हूँ। सासारिक सुखो की इच्छा से नही।

५ माहणेण मईमया जामा तिन्नि वियाहिया।

—आचारांग ८।१

सर्वज्ञ भगवान ने तीन याम अर्थात् महाव्रत कहे हैं—अहिसा, सत्य और अपरिग्रह।

●

२५ सभ्यता

१ सभ्यता चारित्र का वह रूप है, जो मनुष्य को कर्त्तव्य का मार्ग दिखलाता है।

—गांधी

२ नोच्चैर्हसेत्, न शब्दवन्त मारुत मुञ्चेत्, नाऽनावृत-मुखो जृम्भां क्षवथु हास्य वा प्रवर्तयेत्, न नासिका कुष्णीयात्, न दन्तान् विघट्टयेत्, न नखान् वादयेत्॥

—चरकसंहिता सूत्रस्थान ८।१९

सभ्य मनुष्य को चाहिए कि वह अधिक जोर से न हसे, शब्द-युक्त अपानवायु का त्याग न करे, मुख को विना ढके जभाई, छींक व खासी को न निकाले, अगुली से नासिका को न कुरेदे, दातो को न किटकिटावे एव नखो को न बजावे।

(अत्रिऋषि द्वारा अग्निवेश को उपदेश)

३ नान्नमद्यादेकवासा, न नग्न स्नानमाचरेत्।
न मूत्र पथि कुर्वीत, न भस्मनि न गोव्रजे।

—मनुस्मृति ४।४५

एक वस्त्र से भोजन, नग्न होकर नहाना, मार्ग म, राख के ढेर मे तथा गोव्रज मे मूत्र करना—ये काम निपिद्ध है।

४ यदि तुम मनुष्य को सभ्यता सिखाना चाहते हो तो उसका प्रारम्भ दादी से करो।

—विक्टर ह्यूगो

५ सभ्यता और धर्म की प्राचीनता की दृष्टि से कोई भी राष्ट्र आर्य-सभ्यता की समता नही कर सकता।

—हे० एन० थाग



२६ योग

१ मोक्खेण जोयणाओ, जोगो सव्वोवि धम्मववहारो।

—हरिभद्र-योगविंशिका

जो आत्मा को मोक्ष के साथ जोडता है, वह सभी धार्मिक व्यवहार योग है।

२ योगश्चित्तवृत्तिनिरोध । —पातंजलयोगदर्शन १।२

चित्तवृत्ति का निरोध योग है।

३. कुशलप्रवृत्तिर्योग । —बौद्ध

सत्प्रवृत्ति का नाम योग है।

४ समत्व योग उच्यते । —गीता

समता को योग कहते हैं।

५. य सन्यासमिति प्राहु-र्योग त विद्धि पाण्डव!

—गीता ६।२

पाण्डुनन्दन! जिसको सन्यास कहते हैं, उसी को तू योग समझ।

६. यम-नियमाऽऽसन-प्राणायाम-प्रत्याहार–धारणा–ध्यान—समाधयोऽष्टावङ्गानि। —पातंजल-योगदर्शन २।१६

योग के आठ अंग हैं—

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि।

७ **योग की आठ दृष्टियाँ हैं—**

(१) मित्रा, (२) तारा, (३) बला, (४) दीप्रा, (५) स्थिरा, (६) कान्ता, (७) प्रभा, (८) परा—ये क्रमश योग के आठो अगो से युक्त होती हैं।

८ **योगदृष्टियो मे क्रमश नहीं होनेवाले ये आठ दोष हैं—**

(१) खेद, (२) उद्वेग, (३) क्षेप, (४) उत्थान, (५) भ्रान्ति, (६) अभ्युदय, (७) सङ्ग (८) आसङ्ग।

९. **योगदृष्टियो मे क्रमश होनेवाले आठ गुण ये हैं—**

(१) अद्वेष, (२) जिज्ञासा, (३) सुश्रूषा, (४) श्रवण, (५) बोध, (६) मीमासा, (७) प्रतिपत्ति, (८) प्रवृत्ति।

—योगदृष्टि-समुच्चय

☆

२७ योग-महिमा

१ मोक्षोपायो योगो ज्ञान-श्रद्धान-चरणात्मक. ।

—अभिधानचिन्तामणि १।७७

योग ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है एव मोक्ष का उपाय है ।

२. योग. कल्पतरु श्रेष्ठो, योगश्चिन्तामणि परः ।
योग प्रधान धर्माणा, योग सिद्धे. स्वय ग्रह. ॥

—योगबिन्दु ३७

योग श्रेष्ठ कल्पतरु है, योग दूसरा चिन्तामणि है। योग सभी धर्मो मे उत्कृष्ट है एव योग्य स्वय सिद्धि-मुक्ति को ग्रहण करनेवाला है ।

३ आत्मज्ञानेन मुक्ति स्यात्, तच्चयोगादृते नहि ।

—स्कन्दपुराण

आत्मा का ज्ञान होने से ही मुक्ति होती है, किन्तु वह ज्ञान योग के विना नही होता ।

४. स एवाह स एवाह—मिति भावयतो मुहु ।
योग स्यात्कोऽपि नि शब्द , शुद्ध स्वात्मनि यो लय ॥

मैं वही हू ! मैं वही हूँ । ऐसी भावना करते-करते जो शुद्ध योग-शब्दरहित हो जाता है, उसे अपनी आत्मा मे लय होना कहते हैं ।

५ नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नत. ।
न चातिस्वप्नशीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन ! १६ ॥
युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दु खहा. ॥ १७ ॥

—गीता ६

अर्जुन ! न तो अधिकखानेवाले का योग सिद्ध होता है एव न बिल्कुल न खानेवाले का । न अत्यधिक सोनेवाले का योग सम्पन्न होता है और न अत्यधिक जागनेवाले का ॥१६॥

उसी का योग दु खनाशक होता है, जिसके आहार-विहार नियमित हैं, कर्म करने मे चेष्टा नियमित है तथा सोना और जागना नियमित हैं ॥ १७ ॥

६ असयतात्मना योगो, दुष्प्राप्य इति मे मति ।
वश्यात्मना तु यतता, शक्योऽवाप्तुमुपायत ॥

—गीता ६।३६

मन को वश मे न करनेवाले पुरुष को योग की प्राप्ति बहुत कठिन है । उपाय से आत्मा को वश करनेवाला योग को प्राप्त हो सकता है ।

७ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता, नृणा श्रेयो विधित्सया ।
ज्ञान कर्म च भक्तिश्च, नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित् ॥

— भागवत ११।२०।६

मनुष्यो के कल्याण की इच्छा से मैंने तीन योग कहे हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग । इनके अलावा आत्म-कल्याण का कही कोई उपाय नही है ।

योगशब्द का दूसरे प्रकार में प्रयोग—

८. कायवाड्-मनोव्यापारो योग.।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ४।२६

शरीर, वचन एव मन के व्यापार को योग कहते है।

९. जोगसच्चेण जोग विसोहेइ। —उत्तराध्ययन २९-५२

योग-सत्य से जीव योगो की विशुद्धि करता है अर्थात् मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को शुद्ध बनाता है।

१० जोग च समणधम्ममि, जु जे अनलसो ध्रुव।

—दशवैकालिक ८।४३

आलस्य को छोडकर योगो को सदा श्रमणधर्म मे जोडना चाहिए।

योगी

१ योग समाधि, सोऽस्यास्ति इति योगवान् ।

—उत्तराध्ययन-बृहद्वृत्ति ११।४

योग का अर्थ समाधि है। जिसकी आत्मा मे समाधि हो, वह योगवान योगी है।

२ दृष्टि स्थिरा-यस्य विनापि दृश्य,
वायु स्थिरो यस्य विना प्रयत्नात् ।
मन स्थिर यस्य विनावलम्ब,
स एव योगी स गुरु स सेव्य ।

—गोरक्षाशतक २८

दृश्य पदार्थो के विना जिसकी दृष्टि स्थिर है, प्रयत्न किये विना जिसका पवन स्थिर है एवं किसी भी अवलबन के विना जिसका मन स्थिर है, वही योगी है, वही गुरु है और उसी की सेवा करनी चाहिए।

३. ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रिय ।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चन ॥

—गीता० ६।८

जिसकी आत्मा ज्ञान-विज्ञान मे तृप्त है, जो कूटस्थ है, विजितेन्द्रिय है एव मिट्टी, पत्थर तथा सुवर्ण को समान समझता है, वह योगी युक्त (भगवत्प्राप्तिवाला) कहा जाता है।

४. आत्मौपम्येन सर्वत्र, सम पश्यति योऽर्जुन ।
मुख वा यदि वा दु.ख, स योगी परमो मत. ।।
—गीता० ६।३२

दूमरो के सुख-दु ख को जो अपने सुख-दु ख के समान समझता है, हे अर्जुन ! वह परमयोगी माना जाता है।

५ किमिद कीदृग कस्य, कस्मात् क्वेत्यविशेषयन् ।
स्वदेहमपि नावैति, योगी योगपरायण ।।
—इष्टोपदेश ४२

योग मे लीन योगिराज यह क्या है ? किसका है ? किस कारण से है ? एव कहा है ? अपने शरीर के प्रति भी ऐसा विशेप विचार नही करता ।

६ यद् यदाचरित पूर्वं, तत् तदज्ञानचेष्टितम् ।
उत्तरोत्तारविज्ञानाद् योगिनः प्रतिभासते ।।
—आत्मानुशासन २।१

उत्तरोत्तर विशेष ज्ञान होने से योगिजनो को पूर्वकाल मे जो-जो आचरण किए थे, वे अज्ञान की चेष्टाएँ थी—ऐसे प्रतीत होने लगता है।

७ निर्भय शक्रवद् योगी, नन्दत्यानन्दनन्दने ।
—ज्ञानसार

इन्द्र की तरह निर्भय योगिराज आत्मानन्दरूप नन्दनवन मे मौज करता है।

८. चाण्डाल किमय द्विजातिरथवा शूद्रोऽय किं तापस.,
किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वर. कोऽपि किम् ?

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणो जनैर्,
न क्रुद्धा. पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥

— भर्तृहरि-वैराग्यशतक २४

क्या यह चाण्डाल है अथवा ब्राह्मण है ? शुद्र है या तपस्वी है ? अथवा क्या कोई तत्त्व के विवेक मे चतुर योगिराज हैं ? ऐसे विचित्र प्रकार के विकल्पो द्वारा लोगो से सभाष्यमाण योगिराज राग-द्वेष न करते हुए अपने सयममार्ग मे विहरण करते रहते हैं ।

९ तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक. ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन ।

—गीता ६।४६

तपस्वियो से योगी बडा है, शास्त्रज्ञानियो से भी योगी बडा है और कर्मकाण्डियो से भी योगी बडा है अत हे अर्जुन ! तू योगी बन ।

१० राजा जोगी दोनूं ऊँचा, तावा तुंवा दोनूं सुच्चा ।
तावा डूबे तुंवा तिरे, राजा जोगी के पैरो पडे ॥

११ राजा ने एक योगी को सम्मान एव सुविधापूर्वक राज-महल मे रखा ? फिर सन्देह हुआ कि मेरे मे और इसमे क्या फर्क है । योगी समझकर महलो से निकल चला । राजा-रानी खोजते-खोजते योगी के पास आए । वह वृक्ष के नीचे सूखी रोटी खा रहा था । राजा ने कहा—चलिए महल मे ! योगी ने कहा—पहले तुम यह ग्रामीण भोजन करो । सूखी रोटिया खाते ही राजा-रानी का गला छिल गया एव उबकाई होने लगी । योगी ने तत्त्व

समझाते हुए कहा—तुम दो ग्रास मे ही घबरा गए और मै जिस प्रसन्नता से तुम्हारा मोहनभोग खाता था, उसी प्रसन्नता से यहा सूखी रोटिया भी खा रहा हू बस, तुम्हारे और मेरे मे इतना ही अन्तर है।

१२ ईहे प्रभु ताको जो किशन, प्रभुता को त्यागे,
छारी ना विभ्ति तो विभूति कहा धारी है।
जो लौ भग तजो नाहि तो लौ भगतजी नाहि,
काहे को गुसाई जो गुसाई से न यारी है।
काहे को विराहमन जोको नवि राहमन,
कहा पीर जो पै पर-पीर ना विचारी है।
कैसो वह जोगी जन जाको न विजोगी मन,
आसन ही मार जान्यो आस नहि मारी है।

—किसनबावनी

१३ जनेभ्यो वाक् तत स्पन्दो, मनसश्चित्तविभ्रम.।
भवन्ति तस्मात्ससर्ग, जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥

—समाधिशतक

जहां वहुतजनो से सम्पर्क हो, वहां बोलना पडता है। बोलने से मन मे स्पन्दन पैदा होता है और स्पन्दन से सकल्प-विकल्प बढते हैं, अत योगी को जनसम्पर्क का त्याग करना चाहिए।

○

२६ योगियों के चमत्कार

१ गोरखनाथ—गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ असम मे "महिलासुन्दरी" मे फँसे, दो-तीन पुत्र भी हो गये। 'जाग मछेन्दर गोरख आया'—इस प्रकार का आह्वान करके गोरख ने जाकर उन्हे जागृत किया एव साथ लेकर देश को चले। महिलासुन्दरी ने प्रियतम की झोली मे एक सोने की ई ट डालदी। जगल मे मत्स्येन्द्रनाथ फिर-फिरकर पूछते थे—गोरख ! यहा डर तो नही है ? गोरख ने तत्त्व समझकर ई ट को फेंक दिया और उत्तर दिया—डर तो पीछे रह गया। गुरु कुछ उदास हुए। शिष्य ने पेशाव करके शिला सोने की बनाई और गुरु का मोह शात किया।

२ पादलिप्त और सिद्ध नागार्जुन दो भाई थे। सिद्ध नागार्जुन ने स्वर्ण-सिद्धि-रस की एक तुम्बी भेटरूप मे भाई को दी। पादलिप्त ने उसे फेककर पेशाव द्वारा पत्थर का सोना वनाकर दिखाया।

३. दिल्ली विडलामदिर मे एक योगी ने मन्त्र-शक्ति से पानी का दूध, ई ट की मिश्री एव चम्मच को सोने का

वना दिया। अनेक विदेशी राजदूत भी दर्शको मे शामिल थे।

—हिन्दुस्तान, स० २००६, आसोज सुदी

४ हरिदास नामक एक भारतीय योगी अपनी जीभ को ऊपर उठाकर बडी आसानी से माथे को छू लेता है।

—हिन्दुस्तान, १३ जून १९७१

५. वद्रीनाथ (भारत) का वैरागी गिरि दिन मे पाँच वार प्रार्थना किया करता था और प्रत्येक वार अपने लोहे के डडे को आग मे तपाकर जीभ मे चाट लिया करता था। कहते हैं, वह ५२ वर्षो तक इस साधना मे सलग्न रहा। —विचित्रा, वर्ष ३ अक ४, १९७१

६ लगभग साढे छ सौ वर्ष पहले की वात है। दिल्ली के तख्त पर तव सुलतान "मुहम्मद तुगलक" साहव विराजमान थे। उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के मरक्को नामक देश का एक यात्री "इब्नवतूता" दुनियाँ की सैर करता हुआ दिल्ली आ पहुचा। मुहम्मद तुगलक ने उसका वहुत आदर-सत्कार किया, यहाँ तक कि उसे दिल्ली का काजी वना दिया।

एक दिन दरवार मे योगियो के चमत्कार की वात चली और दो योगी (गुरु-शिष्य) उपस्थित हुए। गुरु ने अपने शिष्य को कुछ सकेत दिया। शिष्य ने पद्मासन लगाया, प्रणायाम किया और एक क्रिया ऐसी की कि विना किसी सहारे के ऊपर उठ गया और उठता ही चला

गया। महल की छत बहुत ऊँची थी। वह उससे भी बहुत ऊँचे चला गया, और आकाश मे अधर ठहर गया। फिर वादशाह के इशारे पर अपने शिष्य को नीचे उतारने के लिए गुरु ने कुछ कहा लेकिन शिष्य इतना ध्यानमग्न था कि उसने कुछ नही सुना। तव गुरु ने अपनी झोली मे से एक खडाऊ निकालकर नीचे रखी और ध्यानमग्न होकर उस पर दृष्टि जमाई। खडाऊ ने ऊपर जाकर शिष्य के चारो ओर चक्कर लगाया और उसकी गर्दन पर कई बार तड़ातड वार किया। तव शिष्य का ध्यान भग हुआ और वह धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। अत मे वह उसी आसन मे जमीन पर आ बैठा। खडाऊ पहले ही गुरु के पास वापस आ गई थी। इब्नवतूता आदि दर्शको के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

७ सुना है कि स्वामी दयानन्द ने सोलह हॉर्स पावरवाली चार घोडो की गाडी को एक अगूठे से रोक दिया था। यह देखकर जोधपुर नरेश उनके पैरो मे पड गये एव भक्त बन गये।

८ पजाव के योगिराज देवमूर्त्ति ने मेरठ मे कई हजार की भीड मे अपनी छाती पर दो हाथियो को खड़ा किया। लोहे की मोटी थाली को दिखलाकर उन्होंने उसे हाथो से कागज की तरह फाड डाला।

एक बैलगाडी में वजन भरा गया। लगभग ५० मन वजन अवश्य होगा। योगीजी ने बैलगाडी मे रस्सी बाँधकर उसके छोर को अपने सिर के बालो से बाँध लिया। उस गाडी को वह काफी दूर तक अपने बालो से ही खीचते रहे।

दो कारे इधर-उधर खडी की गई। दोनो के पीछे दो रस्से बाँध दिये गये। दोनो रस्सो को उन्होने पकड़ लिया। ड्राइवरो के अथक प्रयत्न करने पर भी कारे जरा भी हिल न सकी।

३०० मन वजन से भरे हुए एक ट्रक को उन्होने छाती पर चढा लिया और उचक-उचक कर उसे हिलाते रहे।

—**विचित्रा वर्ष ३, अक ४, १९७१**

९. **कुंभक-प्राणायाम के विशिष्टअभ्यासी प्रो० राममूर्ति—** ये इतने बलिष्ठ थे कि ४०-४० मन के पत्थर को छाती पर रखवाकर तुडवा देते थे, मनुष्यो से भरी हुई गाडी छाती पर से निकलवा देते थे, छाती पर हाथी को खड़ा कर लेते थे, बड़ी-बड़ी मजबूत लोहे की जजीरें हाथो से या गले मे लपेट कर तोड़ डालते थे एव १६ होर्स पावरवाली दो-दो मोटरो को रोक लेते थे। इतना कुछ करने पर भी इनके शरीर पर कही निशान तक नही पड़ता था।

१०. प्रोफेसर राममूर्ति की शिष्या कुमारी तारावाई—

छाती पर १३॥ मन के भारी पत्थर रखवाकर हथौडो से तुडवाना,बालो की सहायता से ३ मन के पत्थर की चट्टान उठा लेना,मनुष्यो से भरी समूची गाडी को अपनी छाती पर से पार करा देना कुमारीतारावाई के लिए बाएँ हाथ का खेल था। उनका सबसे अधिक आश्चर्यजनक काम अपने माथे की सहायता से गाडी को ठेलकर ले जाने का था। इस गाडी पर अनेक आदमी भी लदे रहते थे। इतना ही नही, गाडी के आगे एक तेज छुरा बँधा रहता था और तारावाई इसी छुरे की नौक पर अपना माथा भिडा देती थी तथा गाडी को ठेलकर दूर तक ले जाती थी।

११. श्री सोमेशचन्द्र वसु—

१८ अप्रेल सन् १९३१ को न्यूयार्क (अमेरिका) के वैनडाइक स्टूडिओ मे वगाल प्रान्तस्थ ढाका जिले के निवासी "श्रीसोमेश चन्द्र वसु" ने योगाभ्यास द्वारा गणितसम्वन्धी एक जटिल प्रश्न का आश्चर्यजनक समाधान किया। प्रश्न-कर्त्ता उक्त स्टूडिओ के कलाकार श्री जॉनओ नील ने कागज का एक टुकडा उनकी ओर वढा दिया। उसपर लिखा था—

८५३१२९४६९३७६८४१३२५७२६१४ ३५६३९७८१२६४७३९
८२५७३१२४८७३६४९७१२५६५३२७ ३४७८१७२८६३५७२३
७४८१२५२५७४९१२८३६९२४३७६१८५३

को

७४६३८१२५७३६४७९२८३७४३५ १७९६२९७६४३६८४१७८ ९६७९१२८५७४९५३५९८३८१४२८१२५९५९१८१ ५१२७६३ ९७८२९५७८१६३९५३२८९६४७२५७३६९

से गुणा कीजिए ?

इन अकसमूहो पर एक दृष्टि डालकर वसु महोदय ने अपनी आँखे बद करली और मूर्त्तिवत् बैठे हुए इस प्रश्न को मन ही मन लगाने लगे। स्टुडिओ की खिडकियाँ खुली हुई थी—वाहर सडक पर मोटरे, लारियाँ फायर-इजन आदि शोर-गुल मचाते दौड़ रहे थे। लेकिन वसु महोदय की गणना मे इन सवसे तनिक भी वाधा न पडी। वे चुपचाप वैठे हुए अपने प्रश्न को हल करते रहे। ५२ मिनट ५० सेकिन्ड मे उत्तर तैयार हो गया। उन्होने इस प्रकार लिखा—

६३६७५८३५३२८५९३०६२५६३२८९७७३६६२०१९१३१७२ ८२२०३२५९९७५४४०१७०८१७७३५८६१८६७१६३९६७३८ २९५९५८५७२५०१०४३५७४५६६७९९१६९८३२०७२६४९७ ४१९२८२७०२७२८१५६२७८०८५४४३६९९७३५००५७७४२ ८५७९७१५८०४५७४१ ५७८२३७७४०७४१६८३४८१४८५२ ०६२३३३६३५७४४७५७।

उत्तर मिल जाने के वाद नील महोदय ने श्री वसुजी से पूछा—६५वी पक्ति का ३३ वाँ अक क्या है ? पलक

मारने ही वसुजी ने उत्तर दिया—आठ अर्थात् १८ के ८ रखे गये और एक हासिल लगा।

नील महोदय सहित सभी उपस्थित लोग आश्चर्य से स्तम्भित हो गये।

केवल गुणन ही नही, लम्बे-चौडे भाग, भिन्न, दशमलव, पुनरावर्त्त-दशमलव, समीकरण आदि के प्रश्न आप इतने थोडे समय मे मन ही मन लगा लेते थे कि लोग चकित रह जाते थे। लम्बी-चौडी सैकडो अको की पूर्ण सख्याओ के वर्गमूल, घनमूल, चतुर्घातमूल पचघात-मूल आदि से लेकर १०६ वा घातमूल तक विना कागज पैंसिल के निकाल लेना आपके लिए एक दम साधारण और अधिक से अधिक एक सैकिंड का काम था।

—विचित्रा वर्ष ३ अक ४, १९७१



संयम से लाभ

१ ... अणण्हयत्त जणयइ। —उत्तराध्यययन २६।२६

... से जीव अनास्रव अर्थात् आश्रव-निरोध को उत्पन्न

१ उवसमस... है।

श्रमणत्व क... ...नाशहत्यैन, प्राप्नोति परमा गतिम्।

—मनुस्मृति ६।६६

२. सयम खलु

सयम ही जीव ... से पापकर्म का नाश करके परमगति को ... है।

३ सयमो हि मह... पवित्र: स्याद्, दासो विश्वेशता भजेत्।

प्राणियो की म... ज्ञानानि, मड्क्षु दीक्षाप्रसादत.॥

४. श्रमणत्वमिद र... —चन्दचरित्र, पृष्ठ १०६

यह साधुपना-सय... ...भाव मे अपवित्र व्यक्ति पवित्र बन जाता है, दास ...ता है और ... शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर

५ जाइ सद्धाइ निक्ख...

तमेव अणुपालिज्ज...

जिस श्रद्धा के साथ स... ...इतिहास ... मे २० वर्ष लगे

उसी श्रद्धा के साथ पा... ...गार ... कि ग्रीस का

... एव पतन

६ धम्म चरमाणस्स प...

छक्काए, गणो, राया,

सयमधर्म, मे विचरनेवा...

अवलवन कहे है—(१) छ...

२...

(३) राजा, (४) गाथापति, (५) शरीर (तप-सयम आदि के अनुष्ठान शरीर से होते हैं)।

७ **संयम का स्वरूप** —

निन्नेहा निल्लोहा, निम्मोहा निव्वियार-निक्कलुसा।
निब्भय-निरासभावा, पवज्जा एरिसा भणिया ॥ ६॥
सत्तु-मित्ते य समा, पसस-निंदा अलद्धि-लद्धिसमा।
तण-कणए समभावा, पवज्जा एरिसा भणिया ॥४७॥
उत्तम-मज्झिमगेहे, दरिद्दे ईसरे निरापेक्खा।
सवत्तगहितपिण्डा, पवज्जा एरिसा भणिया ॥४८॥

— षट्प्राभृत २

प्रव्रज्या अर्थात् सयम की पर्याय मे, न स्नेह होता, न लोभ होता, न मोह होता, न विकार होता, न कलुषभाव होता, न भय होता और न किसी की आशा होती उसमे शत्रु-मित्र, प्रशसा-निन्दा, लाभ-हानि और तृण-कनक समान भाव से देखे जाते हैं। प्रव्रज्या मे सभी घरो मे भिक्षा की जाती है। वहाँ बडे-छोटे का और गरीब-धनवान का भेद नही रखा जाता।

संयम से लाभ

१ सजमेण अणण्हयत्त जणयइ। —उत्तराध्ययन २९।२६
सयम से जीव अनास्रव अर्थात् आश्रव-निरोध को उत्पन्न करता है।

२ सन्यासेनापहत्यैन, प्राप्नोति परमा गतिम्।
—मनुस्मृति ६।६६
आत्मा सन्यास से पापकर्म का नाश करके परमगति को प्राप्त होता है।

३. अपवित्र. पवित्रः स्याद्, दासो विश्वेशता भजेत्।
मूर्खो लभेत् ज्ञानानि, मङ्क्षु दीक्षाप्रसादत.॥
—चन्द्रचरित्र, पृष्ठ १०६
दीक्षा के प्रभाव मे अपवित्रव्यक्ति पवित्र वन जाता है, दास जगन्नाथ वन जाता है और मूर्ख शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

४ गीब्बन को ग्रीस का इतिहास लिखने मे २० वर्ष लगे होंगे लेकिन उसका सार इतना ही है कि ग्रीस का उत्थान सयम और सादगी मे हुआ एवं पतन विलासिता से।

५. लोगस्स सार धम्मो, धम्म पि य नाणसारिय विति।
नाणं संजमसार, सजमसार च निव्वाण॥
—आचारांगनिर्युक्ति २४४

विश्व-सृष्टि का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान (सम्यग्-वोध) है, ज्ञान का सार सयम है, और सयम का सार निर्वाण ।

६ सजमहेउ देहो, धारिज्जइ सो कओ उ तदभावे ।
सजमफाइनिमित्त देहपरिपालणा इट्ठा ।।

—ओघनिर्युक्ति गाथा ४७

यह देह सयम के लिए ही धारा जाता है, क्योंकि देह विना सयम नही रह सकता । अत सयम की वृद्धि के लिए ही देह-का पालन इष्ट है ।



३ संयम की दुष्करता

१ जावज्जीवमविस्समो, गुणाण तु महब्भरो।
गुरुओ लोहभारुव्व, जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥३६॥
वालुया कवले चेव, निरस्साए उ सजमे।
असिधारागमण चेव, दुक्कर चरिउ तवो ॥३८॥
अहीवेगतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त ! दुक्करे।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्कर ॥३९॥
जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउ होइ सुदुक्करा।
तहा दुक्कर करेउ जे, तारुण्णे समणत्तण ॥४०॥
जहा भुयाहि तरिउ, दुक्कर रयणायरो।
तहा अणुवसतेण, दुक्कर दमसागरो ॥४३॥

—उत्तराध्ययन १९

हे पुत्र ! इस संयम मे जीवनपर्यन्त विश्राम नही है। भारी लोहभार की तरह सदा गुणो का भार उठाना बहुत मुश्किल है ॥ ३६ ॥

वालुरेत के कवल के समान सयम निस्वाद है। तथा खड्ग-धारा पर चलने के समान यह तय करना दुष्कर है ॥३८॥

जैसे—लोह के जवो का चवाना कठिन है, वैसे ही सर्प की तरह एकान्तदृष्टि से चारित्र का पालना भी कठिन है ॥३९॥

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निशिखा का पीना कठिन है, उसी प्रकार तरुणावस्था मे सयम पालना बहुत कठिन है ॥४०॥

जैसे—भुजाओ से समुद्र का तैरना दुष्कर है, वैसे ही अनुपशान्त आत्मा द्वारा सयमरूपी समुद्र तैरना भी बहुत कठिन है ॥४३॥



४

संयम में सुख-दुःख

१. देवलोगसमाणो उ, परिआओ महेसिण।
रयाण अरयाण च, महानरयसारिसो।

—दशवैकालिक-चूर्णि १।१०

सयम मे अनुरक्त महर्षियो के लिए तो चारित्र-पर्याय स्वर्ग के समान है एव अरक्तो के लिए घोर नरक के समान है।

२. साधु - मारग साकडा, जैसा पिंडखजूर।
चढे तो चाखे प्रेम रस, पडे तो चकनाचूर।

—हिन्दी दोहा

३ नारर्ति सहइ वीरे वीरे न सहइ रर्ति।

—आचाराग २।६

वीरपुरुष न तो सयम मे अरति (नाराजगी) को सहन करता है और न असयम मे रति (खुशी) को सहन करता है।



संयम-दीक्षा का समय आदि

१ कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा खुड्डगस्स खुड्डिया
वा साइरेगट्ठवा सजाय उवट्ठावित्तए वा सभु जित्तए वा ।

—व्यवहार १०।२०

साधु-साध्वियाँ साधिक आठ वर्ष (गर्भ सहित नव वर्ष) के बालक-बालिका को दीक्षा दे सकते हैं एव उनके साथ भोजन कर सकते हैं ।

२ वनेषु च विहृत्यैव, तृतीय भागमायुप ।
चतुर्थमायुषो भाग, त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥

—मनुस्मृति ६।३३

आयुष्य के तीसरे भाग मे वन मे विचर कर चौथे भाग मे सब विषयो का त्याग करके सन्यास-दीक्षा ले ।

३ यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद, ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा ।
अथ पुनरव्रती वा, व्रती स्नातको वोत्सन्नाग्निकोवा ।

—जाबालश्रुति

जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन प्रव्रजित हो जाना चाहिए । चाहे ब्रह्मचर्याश्रम मे हो या गृहस्थाश्रम से हो । वह व्यक्ति चाहे अव्रती हो, व्रती हो, स्नातक हो या उत्सन्नाग्निक ।

४ प्रव्रजेद ब्रह्मचर्याद्वा, प्रव्रजेद् वा गृहादपि ।
वनाद्वा प्रव्रजेद् विद्वा-न्नातुरो वाथ दु खित ।

—अङ्गिरास्मृति

विद्वान् ब्रह्मचर्यादि किसी भी आश्रम से, रुग्ण या दु खित किसी भी अवस्था मे प्रव्रजित हो सकता है।

५. दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पई निग्गथाण वा निग्गथीण वा पव्वावित्तए तजहा—पाईण वा उदीण वा।

—स्थानाग २।१

दो दिशाओ मे साधु-साध्वियो को दीक्षित करना कल्पता है—पूर्व और उत्तर।

६. तओ णो कप्पइ पव्वावेत्तए,तजहा—पडए,वाइए, कीवे।

—स्थानाग ३।४।२०२

तीनो को दीक्षा देना नही कल्पता-जन्म के नपुसक को,वायु की व्याधि से जिसका शरीर इतना मोटा वन गया हो कि वह उठ-बैठ भी नही सकता हो, उसको तथा क्लीव को। (क्लीव चार प्रकार का होता है—१दृष्टिक्लीव, २ शब्दक्लीव, ३ आदिग्ध-क्लीव, ४ निमन्त्रणाक्लीव।)

७ ग्रन्थो मे १८ प्रकार के पुरुप तथा वीस प्रकार की स्त्रियाँ भी दीक्षा के अयोग्य कहे हैं।

—स्थानाग ३।४।२०२ टीका

८ पच्चयत्थ च लोगस्स, नाणाविहिविगप्पण।

—उत्तराध्ययन २३।३२

धर्मो के वेप आदि के नाना विकल्प जनसाधारण मे प्रत्यय (परिचय-पहिचान) के लिए हैं।

९. भावे अ असजमो सत्थ।

—आचारांगनिर्युक्ति ९६

भावदृष्टि से ससार मे असयम ही सबसे वड़ा शस्त्र है।

६ संयम से भ्रष्ट होने के अठारह स्थान

१ दसअट्ठ य ठणाइ, जाइ बालोऽवरज्झइ,
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गथत्ताओ भस्सइ।
वयछक्क कायछक्क, अकप्पो गिहिभायण,
पालियकनिसज्जा य, सिणाण सोहवज्जण।

— दशवैकालिक ६।७-८

छ व्रत—पाच तो महाव्रत छट्ठा रात्रिभोजन व्रत ६, काय-षट्क—छ काय के जीवो की हिंसा के त्याग १२, अकल्पनीय आहार आदि का त्याग १३, गृहस्थ के वर्तन मे भोजन करने का त्याग १४, पल्यङ्क आदि आसन का त्याग, १५, गृहस्थ के अन्तरघर मे बैठने का त्याग १६, स्नान का त्याग १७, शोभा-विभूषा का त्याग १८, सयम की रक्षा के लिये साधु को इन अठारह स्थानो-नियमो का अखण्ड-रूप से पालन करना परम आवश्यक है। जो अज्ञानी मुनि इन अठारह नियमो मे से किसी एक का भी भग करता है, वह निर्ग्रंथता—सयम से भ्रष्ट हो जाता है।

२ संयम से भ्रष्ट होते समय साधु को इन अठारह बातों का सम्यक् प्रकार से चिन्तन करना चाहिए—
ह भो! १ दुस्सामए दुप्पजीवी, २ लहुसगा इत्तरिआ गिहीण कामभोगा, ३ भुज्जो अ साइबहुला मणुस्सा,

४ इमे अ मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाई भविस्सइ, ५ ओमज्जणपुरक्कारे, ६ वतस्स य पडिआयाण, ७ अहरगइ वासोवसपया, ८ दुल्लहे खलु भो ! गिहीण धम्मे गिहीवास मज्झे वसताण, ९ आयके से वहाय होइ, १० सकप्पे से वहाय होइ, ११ सोवक्केसे गिहिवासे-निरुवक्के से परिआए, १२ वधे गिहवासे-मुक्खे परिआए, १३ सावज्जे गिहिवासे-अणवज्जे परिआए, १४ वहुसाहारणा गिहीण कामभोगा, १५ पत्तेग्र पुन्न-पाव,१६ अणिच्चे खलु भो ! मणुआण जीविए, कुसग्गजलविन्दु-चचले, १७ वहु च खलु भो ! पाव कम्म पगड, १८ पावाण च खलु भो ! कडाण, कम्माण, पुव्वि दुच्चिन्नाण, दुप्पडिकताण, वेइत्ता मुक्खो, नत्थि अवेइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता ।

—दशवैकालिक-चूर्णि १

१, इस दुष्षमकाल मे दुख-पूर्वक जीवन व्यतीत होता है २ गृहस्थ लोगो के काम-भोग तुच्छ और क्षणस्थायी हैं, ३ वर्तमान काल के वहुत से मनुष्य छली एव मायावी हैं, ४ यह जो मुझे दु ख उत्पन्न हुआ है, वह चिरकालपर्यंत नही रहेगा ५ सयम के त्यागने से नीचपुरुषो की मेवा करनी पडेगी, ६ वान्त भोगो का पुन पान करना होगा, ७ नीच गतियो मे ले जानेवाले कर्म वँधेंगे, ८ पुत्र-पोत्रादि गृहपाशो मे फसे हुए गृहस्थो को धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है, ९ विसूचिकादि रोग धर्महीन के वध के लिये होते हैं, १० सकल्प-विकल्प भी उसको नष्ट करनेवाले हैं, ११ गृहस्थावास क्लेशसहित है और चारित्र क्लेश से रहित है, १२ गृहवास वधनरूप है और चारित्र मोक्षरूप है, १३ गृहवास पापरूप है और चारित्र पाप से सर्वथा रहित

है, १४ गृहस्थो के काम - भोग बहुत साधारणरूप हैं, १५ प्रत्येक आत्मा के पुण्य एव पाप पृथक्-पृथक् हैं, १६ मनुष्य का जीवन कुश के अग्रभाग पर स्थित जलविन्दु के समान चचल है, अतएव निश्चित रूप से अनित्य है, १७ बहुत ही प्रबल पापकर्मों का उदय है, जो मुझे ऐसे निन्दनीय विचार उत्पन्न होते है, १८ दुष्टविचारो से एव मिथ्यात्व आदि से बाधे हुए, पूर्वकृत कर्मों के फल को भोगने के पश्चात् मोक्ष होता है, बिना भोगे नही होता अथवा तप द्वारा उक्त कर्मों का क्षयकर देने पर मोक्ष हो सकता है।

★

(५) प्रतिश्रुता—शालिभद्र के बहनोई धन्नासेठवत् आवेश मे आकर ली गई दीक्षा।

(६) स्मारणिका—पूर्वभव का स्मरण करवाने से मल्लिप्रभु के पूर्वभव के मित्र प्रतिबुद्धि आदि छह राजाओ की तरह ली गई दीक्षा।

(७) रोगणिका—रोग उत्पन्न होने के कारण सनत्कुमार चक्रवर्तिवत् ली गई दीक्षा।

(८) अनाहता—किसी के द्वारा अनादर किये जाने पर नन्दीषेणवत् (वसुदेव के पूर्वभव मे) ली गई दीक्षा।

(९) देवसज्ञप्ति—देवता के प्रतिबोध देने पर मेतार्यमुनिवत् ली गई दीक्षा।

(१०) वत्सानुबन्धिका—पुत्रस्नेह के कारण वज्रस्वामी की मातावत् ली गई दीक्षा।

६. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता त जहा—इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहओलोगपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा।

—स्थानाग ४।४।३५५

चार प्रकार की प्रव्रज्या कही है—

(१) इहलोकप्रतिबद्धा—जीवन का निर्वाह करने के लिये ली जानेवाली दीक्षा।

(२) परलोकप्रतिबद्धा—परलोकसम्बन्धि-पौद्गलिकसुखो की प्राप्ति के लिये ली जानेवाली दीक्षा।

(३) उभयलोकप्रतिबद्धा—पूर्वोक्त दोनो प्रकार की इच्छा रखते हुए ली जानेवाली दीक्षा।

(४) अप्रतिबद्धा—किसी भी प्रकार की आशा न रखकर आत्मकल्याण के लिये ली जानेवाली दीक्षा।

७ चत्तारिपुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सीहत्ताए णाममेगे णिक्खति सीहत्ताए विहरति। सीहत्ताए णाममेगे णिक्खति सियालत्ताए विहरति। सियालत्ताए णाममेगे णिक्खति, सीहत्ताए विहरति। सियालत्ताए णाममेगे णिक्खति। सियालत्ताए विहरति। —स्थानाग ४।३।३२७

दीक्षित व्यक्ति चार प्रकार के कहे हैं—

(१) सिंहवत् (उन्नतभावो से) दीक्षा लेकर उग्रविहारादि द्वारा सिंहवत् पालनेवाले (धन्नासेठवत्)।

(२) सिंहवत् (उन्नतभावो से) दीक्षा लेकर शृगालवत् (दीन-वृत्ति से) पालनेवाले (कण्डरीकवत्)

(३) शृगालवत् दीक्षा लेकर सिंहवत् पालनेवाले (मेतार्य मुनिवत्)।

(४) शृगालवत् दीक्षा लेकर शृगालवत् पालनेवाले (सोमाचार्यवत्)।

८ चार अन्तक्रियाएँ कही हैं—

(१) अल्पवेदना-दीर्घपर्याय-भरतवत्।

(२) महावेदना-अल्पपर्याय-गजसुकुमालवत्।

(३) महावेदना-दीर्घपर्याय-सनत्कुमारचक्रवर्तिवत्।

(४) अल्पवेदना-अल्पपर्याय-मरुदेवीमातावत्।

—स्थानाग ४।१।२३५

साधना

१ साधना के बिना ईश्वर नही मिलता। —स्वामी रामकृष्ण

२ नित्य साफ न करने से पीतल के पात्रो की तरह साधना का हृदय भी अपवित्र हो जाता है। —तोतापुरी

३. पानी पर किस्ती हो, तरेगी खूब,
किस्ती मे पानी हो, जायेगी डूब। —उर्दू शेर

भावार्थ—पानी पर किस्ती की तरह ससार मे रहकर तो साधक तर सकते हैं, किन्तु किस्ती मे पानी की तरह यदि साधको के मन मे मोह-मायारूप ससार घुस गया, तो फिर वे कभी नही तरेंगे। जैसे-छाछ मे मक्खन का रहना अच्छा है, किन्तु मक्खन मे छाछ का रहना ठीक नही। उसी प्रकार ससारियो मे साधुत्व की भावना का रहना अच्छा है, कितु साधुओ मे ससार की भावना का रहना ठीक नही।

४. पहली डुबकी मे यदि रत्न न मिले तो रत्नाकर को रत्नहीन मत समझो। —स्वामी रामकृष्ण

५. अणुवओगो दव्व। — अनुयोगद्वार-सूत्र १३
उपयोगशून्य साधना द्रव्य है, भाव नही।

६

साधु

१ सम्यग्दर्शनादियोगैरपवर्गं साधयतीति साधु ।

—दशवैकालिक १।५ टीका

सम्यग्दर्शनादि द्वारा जो मोक्ष की साधना करता है, वह साधु है।

२ साध्नोति स्व-परकार्याणीति साधु. ।

जो अपने और दूसरो के आत्मिक-कार्यों को सिद्ध करता है, वह साधु है।

३ आगमचक्खू साहू,
इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि । —प्रवचनसार ३।३४

अन्य सब प्राणी इन्द्रियो की आंखवाले हैं, किन्तु साधु आगम की आंखवाला है।

४ धर्मवित्ता हि साधव ।

—श्राद्धविधि

साधु धर्मरूपी धनयुक्त होते है।

५ साधवो दीनवत्सला ।

साधु दीनदयालु होते हैं।

६ विविहकुलुप्पण्णा साहवो कप्परुक्खा ।

—नन्दीसूत्र चूर्णि २।१६

विविध कुल एव जातियो मे उत्पन्न हुए साधुपुरुष पृथ्वी के कल्पवृक्ष है।

७ जीवियास-मरणभयविप्पमुक्का ।

—औपपातिक समवसरण अधिकार तथा भगवती ८।२

साधु जीने की आशा और मरने के भय से विप्रमुक्त होते है ।

८ जात्यैवेते परिहितविधौ साधवो बद्धकक्षा ।

—पार्श्वनाथचरित्र

सत लोग स्वभाव से ही परहित करने के लिए तत्पर रहते हैं।

९ श्रेय कुर्वन्ति भूतानां, साधवो दुस्त्यजासुभि ।

—श्रीमद्भागवत ८।२०।७

साधुजन अपने दुस्त्यज प्राणो को देकर भी प्राणियो का कल्याण करते हैं ।

१० साधूना च परोपकार-करणे नोपाध्यपेक्ष मन ।

परोपकार करने के समय साधुओ का मन कष्टो की परवाह नही करता ।

११ यथा चित्त तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रिया ।
चित्ते वाचि क्रियाया च, साधूनामेकरूपता ।

—सुभाषितरत्न भाण्डागार

जैसा मन होता है, वैसा ही वचन बोलते हैं और वचन के अनुसार ही क्रिया करते हैं, क्योकि साधुओ के मन-वचन-क्रिया मे एकरूपता होती है ।

१२. युगान्ते प्रचलेद मेरु, कल्पान्ते सप्त सागरा ।
साधव- प्रतिपन्नार्थाद्, न चलन्ति कदाचन ।

—चाणक्य १३।१९

युग के अन्त मे मेरु और कल्प के अन्त मे सातो समुद्र चल जाते हैं, किन्तु सन्त पुरुष स्वीकृत-सिद्धान्त से कभी विचलित नही होते ।

१३ तप्यते लोकतापेन, साधव प्रायशो जना. ।
परमाराधन हृद्धि, पुरुषस्याखिलात्मन ।
—श्रीमद्भागवत ८।७।७४

साधुजन प्राय ससार के ताप मे सतप्त-खिन्न रहते हैं। उनके लिए यही विश्वपावन भगवान की उत्कृष्ट-आराधना है।

१४ या निशा सर्वभूताना, तस्या जागर्ति सयमी ।
यस्या जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ।
—गीता २।६९

जो आत्मविषयक-बुद्धि ससारी जीवो के के लिए रात है, उसमे सयमी साधु जागता है—आत्म-साक्षात् करता है। जिस शब्दादि विषयो मे लगी हुई बुद्धि मे ससारी जीव जागते है—सावधान रहते हैं, वह आत्मार्थिमुनि के लिए रात है।

१५ चक्खुमास्स यथा अन्धो, सोतवा वधिरो यथा ।
—थेरगाथा ८।५०१

साधक चक्षुष्मान् होने पर भी अन्धे की भांति रहे, श्रोत्रवान् होने पर भी वधिर की भांति आचरण करे।

१६ साधवो हृदय मह्य, साधूना हृदय त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानन्ति, नाह तेभ्यो मनागपि ।
—श्रीमद्भागवत ९।४।६८

भगवान् कहते है कि साधु मेरे हृदय है और मै उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवाय किसी को नही जानते और मै उनके सिवा किसी को नहीं जानता।

१७ पूजा-मान-वडाइया आदर मागे मन ।
राम गहे सब परिहरे, सोही साधुजन ॥ —दादूजी

राजा और गरीब को, समझे एक समान।
तिनको साधु कहत है,गुरु नानक निरवान॥
साधु सत का सूपड़ा, सत ही सत भाखत।
पकड पछाड़ै तू तड़ा, कण ही कण राखत॥
गाठ दाम बाधे नही, नहिं नारी से नेह।
कहे कबीर वा साधु के, हम चरनन की खेह। —कबीर
साधु भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
जो धन का भूखा बने, वो फिर साधु नाहिं।
साधु ह्वै सो साधै काया, कोडी एक न राखै माया।
ल्यावै सो देवे चुकाय, वासी रहै न कुत्ता खाय।
जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पडा रहन दो म्यान।
—कबीर

१८. सूफी साधु कौन ?

सूफी वह है, जिसके दिल मे सच्चाई और अमल में इखलास हो। —अब्दुलहसन

१९ शैले-शैले न माणिक्य, मौक्तिक न गजे-गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दन न वने-वने।
—चाणक्यनीति २।९

जैसे हर एक पर्वत पर माणिक नही होते, हर एक हाथी के सिर मे मोती नही होते और हर एक वन मे चन्दन नही होते। वैसे सभी जगह सच्चे साधु भी नही होते।

१० मुनि

१. वीतराग-भय-क्रोधः, स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।

—गीता २।५६

जिसने राग, भय और क्रोध को जीत लिया एवं जो निश्चल-बुद्धिवाला है, उसे 'मुनि' कहा जाता है ।

२ णाणेण य मुणी होई । —उत्तराध्ययन २५।३२

ज्ञान से मुनि होता है ।

३ न मुणी रन्नवासेण । —उत्तराध्ययन २५।३१

जंगल में निवास करने मात्र से मुनि नहीं होता ।

४ पुढवीसमो मुणी हविज्जा । —दशवैकालिक १०।१३

मुनि को पृथ्वी के समान धैर्यवान होना चाहिये ।

५ महप्पसाया इसिणो भवति । —उत्तराध्ययन १२।३१

ऋषि महान् प्रसादगुणवाले होते है ।

६ मौनं मुनीनां प्रशमश्च धर्मः ।

मौन और वैराग्य मुनियों के मुख्य धर्म हैं ।

७ तैलपात्रधरो यद्वद् राधावेधोद्यतो यथा ।
क्रियास्वनन्यचित्तः स्याद् भवभीतस्तथा मुनिः ॥

जैसे—तेलभृत पात्र को लेकर चलनेवाला और राधावेध करने में उद्यत व्यक्ति अपनी क्रियाओं में अनन्यचित्त-तल्लीन रहता

है, उसी प्रकार भवभ्रमण से डरा हुआ आत्मार्थी-मुनि अपने सयम की क्रियाओ मे अनन्यचित्त रहता है ।

८ णिम्ममो णिरहकारो, णिस्सगो चत्तगारवो ।
समो य सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥९०॥
लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो णिन्दा-पससासु, तहा माणावमाणओ ॥९१॥
गारवेसु कसाएसु दड-सल्ल-भएसु य ।
णियत्तो हास-सोगाओ, अणियाणो अवधणो ॥९२॥
अणिस्सिओ इह लोए, परलोए अणिस्सिओ ।
वासी-चदणकप्पो य, असणे अणसण तहा ॥९३॥
अप्पसत्थेहि दारेहि, सव्वओ पिहियासवो ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहि, पसत्थदमसासणो ॥९४॥

—उत्तराध्ययन १९

मुनि निर्मम, निरहकार, नि सग और गर्वरहित होता है तथा त्रस-स्थावररूप समस्त जीवो पर समभाव रखता है ॥९०॥

मुनि लाभ, अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशसा तथा मान-अपमान मे समान वृत्तियुक्त होता है ॥९१॥

मुनि गारव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक मे निवृत्त होता है तथा निदान एव बधन से मुक्त होता है ॥९२॥

मुनि इहलोक-परलोक के सुखो की इच्छा नही करता । उसे चाहे वसोले से काटा जाय या चदन से चर्चा जाय तथा आहार मिले या न मिले, वह समानवृत्ति रखता है ॥९३॥

मुनि सभी अप्रशस्त द्वारो और सभी आश्रवो का निरोध कर

आध्यात्मिक-शुभ ध्यान के योग से प्रशस्तसयमवाला होता है ॥६४॥[1]

६ नाभिनन्देत मरण, नाभिनन्देत जीवितम् ॥४५॥
दृष्टिपूत न्यसेत्पाद, वस्त्रपूत जल पिवेत् ।
सत्यपूता वदेद्वाच, मन पूत समाचरेत् ॥४६॥
क्रुद्ध्यन्त न प्रतिक्रुद्ध्ये-दाक्रुष्ट कुशल वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णां च, न वाचमनृता वदेत् ॥४८॥

—मनुस्मृति अ० ६

मुनि न तो जीने की अभिलाषा करे और न मरने की ॥४५॥

मुनि देख-देखकर पैर रक्खे, वस्त्र से छानकर जल पीवे, सत्य से पवित्र वाणी बोले और मन से पवित्र विचार करे ॥४६॥

क्रोध करनेवाले पर क्रोध न करे, आक्रोश करनेवाले के प्रति भी अच्छे वचन बोले तथा पाँच इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—इन सातो से व्याप्त-वाणी बोले एव असत्य वाणी न बोले ।४८।

१०. मही शय्या रम्या विपुलमुपधान भुजलता,
वितान चाकाश व्यजनमनुकूलोयमनिल ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनिता सङ्गमुदिता,
सुख शान्त शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥

—भर्तृहरि-वैराग्यशतक ७९

भूमि सुन्दरशय्या है भुजा तकिया है, आकाश चद्रवा है, अनुकूल हवा पखा है और चन्द्रमा प्रकाशमान दीपक है । इन

---

१ गीता के १२वे अध्याय मे कहा हुआ भक्त का वर्णन भी इससे काफी कुछ मिलता-जुलता है ।

सब सामग्रियो से युक्त शान्त मुनि महान् ऋद्धिशाली राजा की तरह विरक्ततारूप रानी के साथ आनन्दपूर्वक सोता है।

११. धीरज-तात क्षमा-जननी,
परमारथ-मीत महारुचि-मासी।
ज्ञान-सुपुत्र सुता-करुणा,
मति-पुत्रवधू समता प्रतिभासी॥
उद्यम-दास विवेक-सहोदर,
बुद्धि-कलत्र शुभोदय दासी।
भाव-कुटुम्ब सदा जिनके ढिग,
यो मुनि को कहिए गृहवासी॥
—बनारसीदास

१२. वेदान्तविज्ञान-सुनिश्चितार्था.,
सन्यासयोगाद् यतय शुद्ध सत्त्वा।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले,
परामृता परिमुच्यन्ति सर्वे॥
—मुण्डकोपनिषद् ३।२।६

वेदान्तरहस्य से जिन यतिजनो ने तत्त्व का निश्चय कर लिया है, सन्यास-योग से जो शुद्ध अत करण हो गये हैं, वे अन्तिम देहावसान होने पर ब्रह्मलोको मे अमरत्व को भोगते हुए पूर्णरूप से छूट जाते हैं।

११ अनगार

१ न विद्यते अगार-गृह यस्य स. अनगार. ।
जिसने घर का त्याग कर दिया, वह अनगार है ।

२. समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी वहवे अणगारा भगवन्तो इरियासमिया अममा, अकिंचणा छिण्णग्गथा छिण्णसोया निरुवलेवा, १ कसपाईव मुक्कतोया, २ सख इव निरगणा, ३ जीवो इव अप्पडिहयगई, ४ जच्चकणगमिव जायरूवा, ५ (आदरिसफलगा इव पायडभावा) कुम्मो इव गुत्तिंदिया, ६ पुक्खरपत्त व निरुवलेवा, ७ गगणमिव निरालवणा, ८ अणिलो इव निरालया, ९ चदो इव सोमलेस्सा, १० सूरो इव दित्ततेया, ११ सागरो इव गभीरा, १२ विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का, १३ मदर इव अप्पकपा, १४ सारयसलिल व सुद्धहियया, १५ खग्गिविसाण व एगजाया, १६ भारडपक्खी व अप्पमत्ता, १७ कुजरो इव सोडीरा, १८ वसभोइव जायत्थामा, १९ सिहो इव दुद्धरिसा, २० वसु धरा इव सव्वफासविसहा, २१ सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलता, नत्थिण तेसिण भगवताण कत्थइ पडिवधे

भवइ । ""तेण भगवतो" वासीचदणसमाणकप्पा समलेट्ठुकचणा समसुह-दुक्खा इहलोग परलोगअप्पडिबद्धा ससारपारगामो कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरति । — औपपातिक-समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के वहुत से अनगार भगवत ईर्यासमिति-युक्त हैं, ममत्वरहित हैं, अकिंचन हैं, छिन्नग्रन्थ है, छिन्नश्रोत है, निरुपलेप हैं एव इक्कीस उपमाओ से उपमित हैं। १ वे कास्यपात्रवत् स्नेहमुक्त हैं, २ शख के समान उज्ज्वल (रागादिरगरहित) हैं,३ जीव के समान अप्रतिहत-गतिवाले हैं, ४ अन्य कुधातुओ के मिश्रण से रहित सोने के समान जातरूप लिए हुए चारित्र को निरतिचार रखनेवाले हैं, ५ (दर्पणपट्ट के समान निर्मलभाववाले हैं), कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय हैं, ६ कमलपत्रवत् निर्लेप हैं, ७ आकाश के समान निरालवन हैं, ८ वायु के समान निरालय (अप्रतिवद्धविहारी) हैं, ९ चन्द्रमावत् सौम्यकान्तिवाले हैं, १० सूर्य के समान दीप्ततेजवाले हैं, ११ सागरवत् गभीर हैं, १२ पक्षी के ममान पूर्णत विप्रमुक्त हैं, १३ मेरुपर्वत के समान अडोल हैं, १४ शरद्ऋतु के जल के समान शुद्धहृदयवाले हैं, १५ गेडे के सीग के समान एकजात अर्थात् रागादिभावरहित एकाकी हैं, १६ भारण्डपक्षी के समान अप्रमत्त हैं, १७ हाथी के ममान शूर-कामादि भावशत्रुओ को जीतने मे समर्थ है १८ वृषभ के ममान जातस्थाम-धैर्यवान हैं, १९ सिंह के समान दुर्धर्ष-परीपहादिमृगा से नही हारनेवाले है, २० पृथ्वी के ममान शीत-उष्ण आदि सभी स्पर्श को सहन करनेवाले हैं, २१ घृत आदि से अच्छी तरह हवन की हुई अग्नि के समान (ज्ञान और तपरूप) तेज से जाज्वल्यमान हैं। उनके कही प्रतिवन्ध नही होता...।

वे अनगार भगवत चाहे वसोले से काटे जाएँ, चाहे चन्दन से चर्चे जाएँ, समभाव रहते है। मिट्टी के ढेले एव कचन के प्रति समानवृत्ति रखते है। सुख-दु.ख मे समान रहते हैं। इहलोक-परलोक के विषय मे प्रतिवन्धरहित हैं। ससार के पारगामी हैं एव कर्मों को क्षय करने के लिए उद्यत होकर विहार करते हैं।

भवइ । ····तेण भगवतो ··वासीचदणसमाणकप्पा समलेट्ठुकचणा समसुह-दुक्खा इहलोग परलोगअप्पडिवद्धा ससारपारगामी कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरति ।

— औपपातिक-समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के वहुत से अनगार भगवत ईर्यासमिति-युक्त है, ममत्वरहित हैं, अकिचन हैं, छिन्नग्रन्थ है, छिन्नश्रोत है, निरुपलेप हैं एव इक्कीस उपमाओ से उपमित हैं । १ वे कास्यपात्रवत् स्नेहमुक्त हैं, २ शख के समान उज्ज्वल (रागादिरगरहित) है,३ जीव के समान अप्रतिहत-गतिवाले हैं, ४ अन्य कुधातुओ के मिश्रण से रहित सोने के समान जातरूप लिए हुए चारित्र को निरतिचार रखनेवाले हैं, ५ (दर्पणपट्ट के समान निर्मलभाववाले है), कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय हैं, ६ कमलपत्रवत् निर्लेप हैं, ७ आकाश के समान निरालवन हैं, ८ वायु के समान निरालय (अप्रतिवद्धविहारी) हैं, ९ चन्द्रमावत् सौम्यकान्तिवाले है, १० सूर्य के समान दीप्ततेजवाले हैं, ११ सागरवत् गभीर हैं, १२ पक्षी के समान पूर्णत विप्रमुक्त हैं, १३ मेरुपर्वत के समान अडोल हैं, १४ शरद्ऋतु के जल के समान शुद्धहृदयवाले हैं, १५ गेडे के सीग के समान एकजात अर्थात् रागादिभावरहित एकाकी हैं, १६ भारण्डपक्षी के समान अप्रमत्त है, १७ हाथी के समान शूर-कामादि भावशत्रुओ को जीतने मे समर्थ हैं १८ वृषभ के समान जातस्थाम-धैर्यवान है, १९ सिंह के समान दुर्धर्ष-परीषहादिमृगो से नही हारनेवाले है, २० पृथ्वी के समान शीत-उष्ण आदि सभी स्पर्श को सहन करनेवाले हैं, २१ घृत आदि से अच्छी तरह हवन की हुई अग्नि के समान (ज्ञान और तपरूप) तेज से जाज्वल्यमान हैं । उनके कही प्रतिवन्ध नही होता···।

मुमुक्षु—क्रोध-मान-माया-लोभ का वमन-त्याग करनेवाला होता है, यह सर्वज्ञ-भगवान् की मान्यता है।

४ खतो अ मद्दवऽज्जव-विमुत्तया तह अदीणया-तितिक्खा।
आवस्सगपरिसुद्धि अ, होंति भिक्खुस्स लिंगाइं॥

—दशवैकालिक-निर्युक्ति ३४९

क्षमा, विनम्रता, सरलता, निर्लोभता, अदीनता, तितिक्षा और आवश्यकक्रियाओं की परिशुद्धि—ये सब भिक्षु के वास्तविक चिन्ह है।

५ इह खलु थेरेहिं भगवतेहिं वारस भिक्खुपडिमाओ, पन्नत्ताओ।

—भगवती २।१

स्थविर-भगवन्तो ने वारह भिक्षुप्रतिमायें—साधुओं की प्रतिज्ञायें कही हैं—१ मासिकी, २ द्विमासिकी, ३ त्रिमासिकी, ४ चातुर्मासिकी, ५ पचमासिकी, ६ षणमासिकी, ७ सप्त-मासिकी, ८ प्रथमासप्तरात्रिदिवा, ९ द्वितीया सप्तरात्रिदिवा, १० तृतीयासप्तरात्रिदिवा, ११ अहोरात्रिदिवा, १२ एक रात्रि की।



१२ भिक्षु

१. ससारे भय इक्खतीति-भिक्खु।

—विसुद्धिमग्गो १।७

जो ससार मे भय देखता है—वह भिक्षु है।

क. पच य फासे महव्वयाइ, पचासवसवरे जे स भिक्खू। (५)

जो पाच महाव्रतो का पालन करता है एव मिथ्यात्व आदि पाँच आस्रवो को रोकता है 'वह भिक्षु' है।

ख. सचित्त नाहारए जे स भिक्खू। (३)

जो कभी बीजादि सचित्त का आहार नही करता, वह 'भिक्षु' है।

ग. समसुह-दुक्खसहे य जे स भिक्खू। (११)

जो सुख-दुख को समभाव से सहन करता है, वह 'भिक्षु' है।

घ. तवे रए सामणिए जे स भिक्खू। (१४)

—दशवैकालिक १०

जो तप और सयम मे रक्त होता है, वह 'भिक्षु' है।

२ मणवयकायसुसवुडे स भिक्खू।

—उत्तराध्ययन १५।१२

मन-वचन-काया से जो सवृत है, वह 'भिक्षु' है।

३. से वता कोह च माण च, माय च, एय पासगस्स दसण।

—आचाराग ३।४

मुमुक्षु—क्रोध-मान-माया-लोभ का वमन-त्याग करनेवाला होता है, यह सर्वज्ञ-भगवान् की मान्यता है।

४. खतो अ मद्दवऽज्जव-विमुत्तया तह अदीणया-तितिक्खा।
आवस्सगपरिसुद्धि अ, होति भिक्खुस्स लिंगाइं॥
—दशवैकालिक-निर्युक्ति ३४६

क्षमा, विनम्रता, सरलता, निर्लोभता, अदीनता, तितिक्षा और आवश्यकक्रियाओं की परिशुद्धि—ये सब भिक्षु के वास्तविक चिन्ह हैं।

५ इह खलु थेरेहिं भगवतेहिं बारस भिक्खुपडिमाओ, पन्नत्ताओ। —भगवती २।१

स्थविर-भगवन्तो ने बारह भिक्षुप्रतिमायें—साधुओं की प्रतिज्ञायें कही हैं—१ मासिकी, २ द्विमासिकी, ३ त्रिमासिकी, ४ चातुर्मासिकी, ५ पचमासिकी, ६ षणमासिकी, ७ सप्त-मासिकी, ८ प्रथमासप्तरात्रिदिवा, ९ द्वितीया सप्तरात्रिदिवा, १० तृतीयासप्तरात्रिदिवा, ११ अहोरात्रिदिवा, १२ एक रात्रि की।

१३ श्रमण (समण)

१ श्राम्यतीति श्रमणस्तथा सम इति शत्रु-मित्रादिषु प्रवर्तते इति समण (अण् प्रत्यय)

—स्थानाग ४।४ टीका

श्रम-तपस्या करता है अत वह 'श्रमण' है। तथा शत्रु-मित्रादिक पर समभाव रखता है, इसलिए वह 'समण' है यहा अण् प्रत्यय हुआ है।

२. तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो।
सयणे असयणे अ समो, समो अ माणावमाणेसु॥

—अनुयोगद्वार १३२

जो मन से सु-मन (निर्मल मनवाला) है, सकल्प से भी कभी पापोन्मुख नही होता, स्वजन तथा अस्वजन मे, मान एव अपमान मे सदा सम रहता है, वह समण होता है।

३ जह मम ण पिय दुक्ख, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं।
न हणइ न हणावेइ, सममणइ तेन सो समणो॥

—अनुयोगद्वार १२६

जैसे—मुझे दुःख प्रिय नही लगता, वैसे दूसरो को भी नही लगता। यो जानकर जो किसी भी जीव को न मारता है, न मरवाता है एव समभाव से रहता है, वह श्रमण है।

४ उरग-गिरि-जलण-सागर-नहतल-तरुगण-समो यजो होइ।
भमर-मिय-धरणि-जलरुह-रवि-पवणसमो यसो समणो॥

—अनुयोगद्वार ५

श्रमण वह है, जो सर्पवत् परकृत निवास मे रहता है, परीषहो मे पर्वतवत् निष्प्रकम्प रहता है। अग्निवत् तप के तेज से युक्त होता है एव सूत्रार्थरूप ईंधन से तृप्त नही होता। समुद्रवत् गम्भीर, ज्ञानादि रत्नो का घर एव अपनी मर्यादा को नही तोडनेवाला है। आकाशवत् निरालम्बी होता है। वृक्षसमूहवत्-सुख-दुःख मे समभाव होता है। भ्रमरवत् अनियतवृत्ति से जीवननिर्वाह करता है। मृगवत् ससार मे भयभीत रहता है। पृथ्वीवत् सब कुछ सहन करता है। सूर्यवत् सबको समानरूप से प्रकाश देता है। कमलवत् निर्लेप रहता है एव पवनवत् अप्रतिबद्धविहारी होता है।

१६ निर्ग्रन्थ

१. ग्रन्थः कर्माष्टविधं, मिथ्यात्वाविरतिदुष्टयोगाश्च ।
तज्जयहेतोरशठं, संयतते यः स निर्ग्रन्थः ॥

—प्रशमरति १४२

आठ कर्म, मिथ्यात्व, अव्रत और दुष्टयोग—ये ग्रन्थ कहलाते हैं। जो इन्हे जीतने के लिए सरलभाव से प्रयत्न करता है, वह निर्ग्रन्थ है।

२ आगमबलिया समणा निग्गंथा ।

—व्यवहारसूत्र १०

श्रमण-निर्ग्रन्थों का बल 'आगम' (शास्त्र) ही है।

३. पंचासवपरिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया ।
पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो ॥११॥
आयावयंति गिम्हेसु, हेमन्तेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ॥१२॥
परीसहरिऊदंता, धुयमोहा जिइंदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥१३॥

—दशवैकालिक अ० ३

निर्ग्रंथ मुनि पांच आस्रवों को त्यागनेवाले, तीन गुप्तियों से गुप्त, छ काय के जीवों के प्रति संयमी, पांच इन्द्रियों का

निग्रह करनेवाले, धीर एव सरलदृष्टि द्वारा देखनेवाले होते हैं ॥११॥

सुसमाधिस्थ सयमी मुनि ग्रीष्मकाल मे सूर्य की आतापना लेते हैं। शीतकाल मे अल्पवस्त्रधारी होते हैं। वर्षाऋतु मे प्रतिसलीन-इन्द्रियो को वश करके एक स्थान पर रहते है ॥१२॥

महर्षि निर्ग्रन्थ परीषह-शत्रुओ को जीतनेवाले, धूतमोह एव जितेन्द्रिय होते हैं तथा सर्वदु खो के विनाशार्थ पराक्रम करते हैं ॥१३॥

४ समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी बहवे निग्गथा भगवतो अप्पेगइया आभिणिबोहियणाणी जाव केवल-णाणी, अप्पेगइया मणबलिया वयबलिया कायबलिया, अप्पेगइया मणेण सावाणुग्गहसमत्था ३,अप्पेगइया खेलो-सहिपत्ता एव जल्लोसहि०,विप्पोसहि,आमोसहि०,सव्वो-सहिपत्ता अप्पेगइया कोट्ठबुद्धी एव बीयबुद्धी पडबुद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी अप्पेगइया सभिन्नसोया,अप्पेगइया खीरासवा,अप्पेगइया महुआसवा,अप्पेगइया सप्पिआसवा, अप्पेगइया अक्खीणमहाणसिया एव उज्जुमई, अप्पेगइया विउलमई विउव्वणिड्ढिपत्ता चारणा विज्जाहरा आगासाइवाइणो ॥ अप्पेगइया कणगावलि तवोकम्म पडिवण्णा एव एगावलि खुड्डागसीहनिक्कीलिय तवो-कम्म पडिवण्णा, सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरति । —औपपातिक समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी अनेक निर्ग्रन्थ भगवन्त, जिनमे कई एक मतिज्ञानी हैं यावत् कई केवलज्ञानी हैं। कई मनोबली, वचनबली एव कायबली हैं, तो कई मन, वचन एव काया से शाप और अनुग्रह की क्रिया करने मे समर्थ हैं। कई खेल्लोपधिलब्धिवाले हैं तो कई जलमोपधि, विप्रुडोपधि, आमर्पोपधि, और सर्वौपधिलब्धिवाले हैं। कई कोष्ठक बुद्धिवाले हैं तो कई बीजबुद्धि और पटबुद्धिवाले हैं। कई पदानुसारिणी लब्धिवाले हैं तो कई सभिन्नश्रोतलब्धि-वाले हैं। कई क्षीरमधुसर्पिराश्रवलब्धिवाले हैं तो कई ऋजुमति, विपुलमति एव विकुर्पणाऋद्धियुक्त हैं। कई चारण एव विद्याधर हैं तो कई आकाश मे गमन करनेवाले हैं। कई कनकावली तप कररहे हैं तो कई एकावली, लघुसिंह-निष्क्रीडित आदि तप मे लीन हैं। इस प्रकार सयम-तप मे आत्मा को भावित करते हुए विहार कररहे हैं।

५. पच णियठा, पण्णत्ता, त जहा—
पुलाए, बउसे, कुसीले, नियठे, सिणाए।

—स्थानाग ५।३।४४५

निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के होते हैं—

(१) **पुलाक**—साररहित धान्य को पुलाक कहते हैं। तप और ज्ञान मे प्राप्त लब्धि के प्रयोग द्वारा बल-वाहन सहित चक्रवर्ती आदि का मानमर्दन करने मे तथा ज्ञानादि के अतिचारो का सेवन करने से जिनका सयम पुलाकवत् सार-रहित हो, वे पुलाकनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

(२) **बकुश**—बकुश शब्द का अर्थ चित्र (चीते जैसा) वर्ण है। शरीर एव उपकरणो की शोभा-विभूपा करके उत्तरगुणो

मे दोष लगाने से जिनका चारित्र चित्रवर्ण (दोषो के दाग-वाला) होगया है, वे वकुशनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

(३) कुशील—मूल व उत्तर गुणो मे दोष लगाने मे तथा सज्वलन कषाय के उदय से जिनका शील-चारित्र कुत्सित व दूषित हो गया है, वे साधु कुशीलनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील।

(४) निर्ग्रन्थ—ग्रन्थ का अर्थ यहां मोह है। जो साधु मोह से रहित हैं, उन्हे निर्ग्रन्थ कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—उपशान्तमोहवाले एव क्षीणमोहवाले। दोनो क्रमश ग्यारहवे-बारहवे गुणस्थान मे निवास करते हैं।

(५) स्नातक—स्नान किये हुए को स्नात या स्नातक कहते है। शुक्लध्यान द्वारा समस्त घातिककर्मो को खपाकर जो शुद्ध हो गये हैं (नहालिये हैं), वे मुनि स्नातक-निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।



१५ स्थविर

१. सत्मार्ग से गिरते हुए मनुष्य को स्थिर करनेवाले व्यक्ति **स्थविर** कहलाते हैं ।

२. दसविहा थेरा पण्णत्ता, तं जहा—गामथेरा, णगरथेरा, रट्ठथेरा, पसत्थथेरा, कुलथेरा, गणथेरा, संघथेरा, जाइथेरा, सुयथेरा, परियायथेरा ।

—स्थानांग १०।७६१ तथा समवायाङ्ग १०

स्थविर दस प्रकार के कहे हैं—(१) ग्रामस्थविर, (२) नगरस्थविर, (३) राष्ट्रस्थविर, (४) प्रशास्तृस्थविर, (५) कुलस्थविर, (६) गणस्थविर, (७) संघस्थविर, (८) जातिस्थविर, (९) श्रुतस्थविर, (१०) पर्यायस्थविर ।

३. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी वहवे थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा वलसंपण्णा रूवसंपण्णा विणयसंपण्णा णाणसंपण्णा दंसणसंपण्णा चरित्तसंपण्णा लज्जासंपण्णा लाघवसंपण्णा, ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी, जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जियइंदिया जियणिद्दा जियपरीसहा, जीवियासमरणभयविप्पमुक्का, वयप्पहाणा " मंतप्पहाणा वेयप्पहाणा वंभ-

प्पहाणा नयप्पहाणा नियमप्पहाणा सच्चप्पहाणा सोय-प्पहाणा... .सुसामण्णरया दंता इणमेव णिग्गंथ पाव-यण पुरओ काउं विहरंति। तेसि ण भगवंताणं आया-वायावि विदिता भवंति,परवाया विदिता भवंति,आयावाय जमइत्ता नलवणमिव मत्तमायंगा अच्छिद्दपसिणवागरणा रयणकरंडगसमाणा कुत्तियावणभूया परवादियपमद्दणा दुवालसंगिणो समत्तगणिपिडगधरा .... अजिणा जिणसंकासा, जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी बहुत से स्थविर भगवंत जातिसंपन्न हैं तथा कुल, बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र लज्जा, एवं लाघवसंपन्न हैं। ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी हैं एवं क्रोध-मान आदि को जीतनेवाले हैं। वे जीवि-ताशा और मरणभय से विप्रमुक्त हैं। व्रत,गुण,करण,चरण,निग्रह, निश्चय, आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षान्ति, मुक्ति, विद्या, मन्त्र, वेद, ब्रह्म, नय, नियम, सत्य और शौच मे प्रधान-श्रेष्ठ हैं।... वे श्रमणत्व मे रक्त हैं, दान्त हैं और इस निर्ग्रन्थप्रवचन को आगे करके विचर रहे हैं। जिन्हें आत्मवाद (स्वसिद्धान्त) और परवाद (अन्यमत के सिद्धान्त) विदित हैं, आत्मवाद को हृदय में रमाकर नलवन में मत्त हाथी की तरह ज्ञानवन में रमण कर रहे हैं, जटिल से जटिल प्रश्नों का सरलता से उत्तर देने में समर्थ हैं। वे रत्नकरण्डक के समान हैं, कुत्रिकापण

जैसे हैं[1], परवादियो का प्रमर्दन करनेवाले है। द्वादशाङ्ग के ज्ञाता है, समस्त गणिपिटक के धारक है।. . .जिन न होकर भी जिन के समान है और जिनके तुल्य अवितथ-सत्यवाणी वागरते हुए सयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार कररहे है।

१ कु-पृथ्वी, त्रिक-तीन, आपण-दुकान अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य, पातालरूप तीनो पृथ्वियो मे उपलब्ध होनेवाली सब वस्तुएँ जिस दुकान मे मिल सकती हो, उस दुकान को कुत्रिकापण कहते हैं। पुराने जमाने मे ऐसी देवाधिष्ठित दुकानें बडे शहरो मे हुआ करती थीं। यहाँ स्थविरो को कुत्रिकापण की उपमा देने का मतलब यह है कि उनके पास कुत्रिकापण की तरह हर एक प्रकार के ज्ञान का अद्भुत सग्रह होता है।

१६ तापस

१ स तापसो यो परतापकर्षण.।

वास्तव मे तापस-वही है, जो दूसरो का सताप दूर करे।

२. तवेण होइ तावसो। —उत्तराध्ययन २५।३२

तप करने से तापस होता है।

३. कुसचीरेण न तावसो। — उत्तराध्ययन २५।३१

वल्कलादि वस्त्रमात्र पहनने से तापस नही होता।

●

जैसे हैं[1], परवादियो का प्रमर्दन करनेवाले हैं। द्वादशाङ्ग के ज्ञाता है, समस्त गणिपिटक के धारक है।.. जिन न होकर भी जिन के समान है और जिनके तुल्य अवितथ-सत्यवाणी वागरते हुए सयम-तप मे आत्मा को भावित करते हुए विहार कररहे हैं।

---

१ कु-पृथ्वी, त्रिक-तीन- आपण-दुकान अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य, पातालरूप तीनों पृथ्वियो मे उपलब्ध होनेवाली सब वस्तुएँ जिस दुकान मे मिल सकती हो, उस दुकान को कुत्रिकापण कहते हैं। पुराने जमाने मे ऐसी देवाधिष्ठित दुकानें बडे शहरो मे हुआ करती थी। यहा स्थविरो को कुत्रिकापण की उपमा देने का मतलब यह है कि उनके पास कुत्रिकापण की तरह हर एक प्रकार के ज्ञान का अद्-भुत सग्रह होता है।

१६

१ स तापसो यो परतापकर्षण. ।

वास्तव मे तापस-वही है, जो दूसरो का सताप दूर करे ।

—उत्तराध्ययन २५।३२

२ तवेण होइ तावसो ।

तप करने से तापस होता है ।

— उत्तराध्ययन २५।३१

३ कुसचीरेण न तावसो ।

वल्कलादि वस्त्रमात्र पहनने से तापस नही होता ।

१७ फकीर

१. फकीर का अर्थ—

फे-फाका(तपस्या),काफ-कनायत(फाके पर भरोसा),इये-याद इलाही, (पल-पल मे प्रभु का स्मरण), रे-रियायत-सयम मे रहना। (फे-काफ-इये-रे=फकीर) तत्त्व यह है कि जो तपस्या करता है एव उसमे भरोसा रखता है तथा प्रभु का स्मरण करता हुआ सयम मे रहता है, वह फकीर है।

२. फिक्र छाड फराकमल धर चित्त आतम धीर,
दया कपन पहने फिरे, ताको नाम फकीर।

३. फिकर फिकर को खात है, फिकर फिकर का पीर,
फिकर का जो फाका करे, ताको नाम फकीर॥

४. फकीर सोही फरक्क रहे, नहि संग करे विषयी-जन केरा,
आप हवाल मे मस्त रहे,वाड़ी वाग वजार मसीत मे डेरा।
आप उपाय न छावत छप्पर, होत खुशी जहा लेत वसेरा,
'रामचरण' खुदा भख भजन,वार गिने नहि साझ-सवेरा॥

५. मेडिय मदिर छाड़ के क्यू वन,
वाघत झूपडी फूस-तटिदा,
लूखड़ी-सूकड़ी खाय रहो,
काला मुँह करो तुम खाट मटिदा।

रूप उन्हो कू हि लोडिए जो कोई,
नारी का आसक होय लटिदा ।
फकीरी का राह कठिन है,
उली पग धरता निकले दूध छटिदा ।

—भापाश्लोकसागर

६ गिह न छाए णपि छायएज्जा । —सूत्रकृतांग १०।१५

साधु स्वय न छप्पर छाए और न दूसरे से छवाए ।

७ आरा शहर मे मुहम्मद अलतवी कलेक्टर ने एक फकीर से पूछा—अच्छे साधु कहाँ देखे ?

फकीर–कु भ के मेले मे ।

कलेक्टर—मुसलमान होकर कु भ का नाम कैसे ?

फकीर—जैसे ऊपर चढे व्यक्ति की दृष्टि मे छोटे-बडे सभी वृक्ष एक समान होते है, उसी प्रकार जिसका मन ससार से ऊपर उठ गया है, उसके दिल मे हिन्दु-मुसलमान का भेद नही रहता ।



१. वदन प्रसादसदन, सदय हृदय सुधामुचो वाच: ।
करणं परोपकरण, येषा केषा न ते वन्द्या !

जिनका वदन आनन्द का सदन है, हृदय दयासहित है, वाणी अमृतवर्षिणी है और इन्द्रियाँ परोपकारिणी हैं—ऐसे सन्त पुरुष किसके वन्दनीय नही होते ।

२. सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ता, प्रणता: समदर्शिन: ।
निर्ममा निरहकारा, निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहा: ॥

—भागवत ११।२६।२७

सत जब किसी प्रकार की इच्छा नही करते, वे मुझमे ही चित्त लगाए रहते हैं तथा अतिनम्र, समदर्शी, ममत्वरहित, अहकाररहित, निर्द्वन्द्व एव निष्परिग्रह होते हैं ।

३. मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्त ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्य,
निजहृदि विकसन्त सन्ति सन्तः कियन्त ॥

– भर्तृहरि-नीतिशतक ६६

जिन के मन-वचन-काया धर्म-अमृत मे पूर्ण हैं, जो तीनो ही लोको को अपने उपकार मे तृप्त कर रहे हैं तथा जो दूसरो के परमाणु जितने छोटे गुणो को भी पर्वत जितना बडा करके मन मे खुश हो रहे हैं, ऐसे-सन्त कितने-क हैं ?

४ स्वय हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः। —श्रीमद्भागवत १।१९।८

साधु स्वय तीर्थों को पवित्र करते है।

५ सत हृदय नवनीत समाना,
कहा कविन्ह पै कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता,
पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता॥
—रामचरितमानस

६. गङ्गा पाप शशी ताप, दैन्य कल्पतरुर्यथा।
पाप ताप च दैन्य च, हन्ति सन्तो महाशयाः॥
—चदचरित्र, पृ० १०६

गगा पाप का, चन्द्रमा ताप का और कल्पवृक्ष दीनता का नाश करता है, किन्तु महामना सतपुरुष पाप, ताप एव दीनता—इन तीनो का ही नाश करते हैं।

७ कोउक निन्दत कोउक वन्दत,
कोउक भावसो देत है भच्छन।
कोउ कहत्त ये मूरख दीसत,
कोउ कहत्त ये चतुर-विचच्छन।
कोउक आय लगावत चन्दन,
कोउक डारत है तन तच्छन।
सुन्दर! काहू पै राग न रोप सो,
ये सब जानिये सन्त के लच्छन।

८ सज्जन ऐसा होइए, जैसा वन का कैर।
ना कहू सो दोस्ती, ना काहू सो वैर॥

९. सता ! हेत जु राखिये, पातलवाली प्रीति ।
जीम्यां पाछै फेंक दें, या सन्तन की रीत ॥

१० भावे लंबे केश रख, भावे मुंड मुंडाव ।
साहिब से सच्चे रहो, बन्दे से सदभाव ॥

—नानक

११ जैसे—सत्ताधारी पुरुषो की वाणी से सत्ता एव गृहिणियो की वाणी से प्रेम झलकता है। उसी प्रकार सन्तो की वाणी से त्याग-वैराग्य-पवित्रता एवं आत्मबल प्रकट होता है और श्रोताओ पर अवश्य प्रभाव पडता है।



कतिपय जगत्प्रसिद्ध संत-महात्मा

श्रमण भगवान महावीर—

जैन-सिद्धान्तानुमार आप चौवीस तीर्थङ्करो मे मे अतिम तीर्थंकर थे। इस समय आपका ही शासन चल रहा है।

आप का जन्म क्षत्रियकुंड नगर मे चैत्र शुक्ला १३ को हुआ था। माता का नाम त्रिशला और पिता का नाम सिद्धार्थ था। जबसे आप गर्भ मे आये तभी से उत्तरोत्तर अन्न-धनादि की वृद्धि होने लगी। अत पिता ने आपका नाम वर्द्धमान रखा। युवावस्था प्राप्त होने पर, यशोदा नाम की राजकन्या से आपका विवाह हुआ।

जब आप तपस्यार्थ वन की ओर जाने लगे, तब इन्द्र ने आपको छद्मस्थ-अवस्था मे उपसर्गों से सुरक्षित रहने मे सहायता देना चाहा, पर आपने कहा—मुझे किसी दूसरे का सहारा नही चाहिए। सुनकर इन्द्र चकित हुआ और आपको 'महावीर' के नाम से सबोधित किया।

आपका तपस्याकाल बहुत लम्बा चला—१२ वर्ष १३ पक्षो मे आपने केवल ११ मास २० दिन आहार लिया। आपके तपस्याकाल मे बडे-बडे उपसर्ग आए, परन्तु आप मेरुवत् अचल रहे। आखिर कर्म-शत्रु हारे और वैशाख शुक्ला १० को आप केवलज्ञानी बने।

अपने आपको धर्म की वेदी पर चढाते हुए विरोधियो से कहा—'होरमज्द' (ईश्वर) तुम्हे क्षमा करे। पारसीधर्म मे वैदिकधर्म की तरह ज्ञान, भक्ति और कर्म-तीनो मार्ग अपनाये गये हैं, पर विशेषवल कर्म-मार्ग पर दिया गया है। यदि एक ही शब्द मे कहें तो इस धर्म का सार है परोपकार।

—कल्याण सतभक तथा
'पारसीधर्म क्या कहता है ?' के आधार से।

४. महात्मा ईसामसीह :—

इनका जन्म वि० स० ५७ मे फिलस्तीन की राजधानी यरूसलम से ६ मील दूर वेयलहम नगर के एक वढई परिवार मे हुआ था। माता का नाम मरियम और पिता का नाम यूसुफ था। वचपन से ही ईसा मे अनेक दैविकगुणप्रकट हो गये थे। १२ वर्ष की आयु मे तो ये यरूसलम के वडे-वडे विद्वानो से ज्ञान-चर्चा करने लग गये थे।

३० साल की आयु मे ये जोर्डन नदी के किनारे यूहन्ना (जॉन) नामक एक महात्मा के पास उपदेश सुनने गये। यूहन्ना का उपदेश था—सवके साथ प्रेम से रहो। दूसरो का माल मत छीनो। जो कुछ मिला है, उसी मे सन्तुष्ट रहो। गरीवो को मत सताओ। यदि तुम्हारे पास दो कोट है तो एक उसे दे दो, जिसके पास न हो। अगर तुम्हारे पास खाने को है तो उसे खिलादो, जिसके पास खाने को कुछ भी नही है। अच्छी करनी करो और अपना जीवन वदलो।

ईसा को यूहन्ना का उपदेश वहुत पसद आया और ये उनके शिष्य वन गये। फिर ये समाज मे फैली हुई गलतप्रथाओ का विरोध करते हुए सत्य, दया, दान, क्षमा आदि मानव-

धर्मों का प्रचार करने लगे। यह प्रचार कतिपय रूढिवादी यहूदियो को असह्य हो गया। उन्होंने इन पर ऐसे मिथ्या अभियोग लगाये जिसके कारण इन्हे प्राणदण्ड दिया गया। सूली पर चढने से पूर्व इनकी प्रार्थना थी—"प्रभो! इन लोगो को क्षमा कीजिए, ये वेचारे नही जानते कि हम क्या कर रहे है?"

ईसा के साइमन (पीटर) आदि १२ मुख्य शिष्य थे। ईसाई-धर्म और इस्वी सन् के प्रवर्त्तक ईसा ही थे। ईसाई धर्म का मुख्य तत्त्व है'—

Love is God, God is Love

अर्थात् प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है।

—कल्याण संतअक, तथा
'ईसाईधर्म क्या कहता है?' के आधार से।

५. सुकरात—

ईसा से पूर्व पांचवी सदी के उत्तरार्ध मे यूनान मे इनका जन्म हुआ। पिता सिलावट थे एव माता दाई का काम करती थी। बचपन से ही ये पढने मे तेज थे। उन्होंने महात्माओ से ज्ञान एव जजो-वकीलो मे तर्क-शक्ति बढाई। क्रोध को विशेषरूप से जीता और राजधानी एथेंस मे धर्म-प्रचार करने लगे।

उस समय सूफीसतो का वहाँ बडा जोर था। वे लौकिक-प्रेम की गाथाओ के माध्यम से लोगो को ईश्वर-प्रेम की ओर आकृष्ट करने का स्वांग रचते थे। परन्तु वस्तुत. परमार्थसत्ता के वास्तविक ज्ञान का उनमे अभाव ही था। सुकरात के प्रभाव से उन लोगो का प्रभाव धनै' शनै क्षीण होने लगा।

सुकरात को मनुष्य की अल्पज्ञता का भी पूरा भान हो चुका था। उनका यह प्रसिद्ध वाक्य था—I Know that I Know nothing अर्थात् मेरा ज्ञान तो यही बतलाता है कि मैं कुछ नही जानता। इनके आत्मवाद का युवको पर अत्यधिक प्रभाव पडा, किन्तु राज्याधिकारी विरुद्ध हो गये और उन्होंने इन पर निरीश्वरवादिता का अभियोग लगाकर इन्हें मृत्युदड के रूप मे जहर का प्याला दे दिया, जिसे ये हँसते-हँसते पी गए।

—कल्याण संतअंक के आधार से।

६ **महात्मा डायोजिनीज—**

डायोजिनीज ग्रीस के एक महान् तत्त्ववेत्ता सत थे। जीवन के बाह्यव्यवहारो के प्रति लापरवाह होकर ये बाजार मे पडे हुए एक काठ के पीपे मे ही मस्त पडे रहते थे। शाह सिकन्दर एकबार इनके दर्शनार्थ आया और अपनी महानता दिखलाता हुआ बोला :—

सिकन्दर— मै महान विजेता सिकन्दर हूँ।

महात्मा—मै सिनिक (अवधूत) डायोजिनीज हूँ।

सिकन्दर—मैं सारी दुनियां को मुट्ठी मे रखता हूँ।

महात्मा—मैं सारी दुनियां के लात मारता हूँ।

सिकन्दर— आप, मैं चाहूं उससे ज्यादा नही जी सकते।

महात्मा—तू चाहे या न चाहे, मुझे अवश्य मरना है।

सिकन्दर—आप चाहे सो मांग सकते हैं।

महात्मा—मेरे सामने की धूप छोडकर दूर हो जाओ।

महात्मा की निःस्पृहता से प्रभावित होकर सिकन्दर ने कहा—"अगर सिकन्दर-सिकन्दर न होता तो ग्रीस का तत्त्ववेत्ता डायोजिनीज होता।"

—कल्याण संतअक एवं श्रुति के आधार से।

७. मार्टिन लूथर—

जर्मनी (यूरोप) मे एक किसान के घर सन् १४८३ ई० मे इनका जन्म हुआ। वकालत पढे। धर्म की तरफ झुकाव अधिक था।

उन दिनो रोम के पोप (धर्मगुरु) सारे यूरोप मे ईश्वरवत् पूजे जाते थे। उनका यह कहना था कि बडे से बडा पापी भी हमारा सर्टीफिकेट (मुक्तिपत्र) लेने से स्वर्गगामी बन जाता है। श्रद्धालु लोग धन देकर पोपो से 'मुक्तिपत्र' लेने लगे। पाप-अत्याचार की वृद्धि होने लगी। लूथर ने लोगो को पोपलीला का रहस्य समझाते हुए कहा—सत्य, अहिंसा आदि के बिना इन कागज के टुकडो मे कल्याण कभी नही होगा। लोग समझे एव 'प्रोटेस्टेंट' मत चला। पोप क्रुद्ध हुए तथा इन्हे जीवित जला देने की आज्ञा दी। लूथर बच निकले और प्रोटेस्टेंट धर्म का प्रचार करते हुए ६० वर्ष की आयु मे परलोकगामी हुए।

—अध्ययन के आधार पर।

८. महर्षि वाल्मीकि—

इनका मूल नाम अग्निशर्मा था। डाकुओं के संसर्ग मे रहकर ये लूटमार और हत्याएँ करने लगे। एक दिन इन्होने सप्त-ऋषियों पर भी आक्रमण कर दिया। ऋषियो ने पूछा भाई! यह पाप किसके लिए कर रहे हो? इन्होने कहा—घरवालो के लिए। ऋषि बोले—क्या वे पाप के फल भोगने मे हिस्सा लेंगे? इन्होने माता-पिता, स्त्री आदि से पूछा तो

उन सबने इन्कार कर दिया। तब ये रोते-रोते आकर ऋषियो के चरणो मे पड गये और उनके उपदेश से इनके ज्ञान-नेत्र खुल गये। सप्तऋषियो ने रामनाम का मत्र दिया। ये एक ही जगह बैठकर रामराम जपते रहे। इनका शरीर दीमको का घर बन गया। (दीमको के घर को वल्मीक कहते हैं) तेरह वर्ष बाद, ऋषि वहाँ वापिस आये और इनको वल्मीक से निकाला। वल्मीक से निकलने के कारण इनका नाम वाल्मीकि हुआ। ये ही वाल्मीकिऋषि आदिकवि के नाम से प्रख्यात हैं।

(स्कंदपुराण पाँचवां अवतिखड, अवतिक्षेत्र माहात्म्य अ० २४)

६. जगद्गुरु-आदिशंकराचार्य—

इनका जन्म सम्वत् ८३५, कोचीन (केरल), माता सती, पिता शिवगुरु एव जन्म का नाम शकर था। शकर प्रथमवर्ष मे मातृभाषा पढे एव दूसरे वर्ष मे १८ पुराण पढे। तीन वर्ष की आयु मे पण्डित बने एव पाँचवें वर्ष उन्हें जनेऊ दी गई। इनके विषय मे यह भी कहा जाता है—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी, द्वादशे सर्वशास्त्रवित।
षोडशे कृतवान् भाष्य, द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात् ॥

ये आठ वर्ष की आयु मे चारो वेद और बारह वर्ष की आयु मे अन्य सभी शास्त्र पढ चुके थे। सोलह वर्ष की आयु मे इन्होंने ब्रह्मसूत्र एव उपनिषदो के भाष्य बनाए और बत्तीसवें वर्ष मे ये दिवगत हो गये।

वैदिकधर्म का मडन करना इनको बचपन से ही अभीष्ट था। वेदपारगत कुमारिलभट्ट से प्रयाग मे मिले।

उन्होंने शकर से मडनमिश्र को अपनी ओर खीचने की सलाह दी। नर्मदातट पर माहिष्मतीनगरी गये। मडन से १६ दिन चर्चा हुई। (उभयभारती उनकी पत्नी मध्यस्थ थी) मडनमिश्र हारे। फिर उभयभारती अर्द्धांगिनी के नाते चर्चा मे आ बैठी। कामशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्न चलाए। शकर ने समय मांगकर परदेह-प्रवेशिनी विद्या से मृत राजा के शरीर मे प्रवेश किया और कामशास्त्र पढा। तत्पश्चात् उभय-भारती से १७ दिन चर्चा करके विजय प्राप्त की। दोनो (पति-पत्नी) शकर के शिष्य-शिष्या बने एव उनका सहयोग पाकर इन्होंने, वैदिकधर्म का अत्यधिक प्रचार किया। सम्वत् ८६७ मे शकराचार्य दिवगत हो गये।

—शंकरदिग्विजय के आधार से।

१०. महात्मा कबीर—

इनका जन्म वि० स० १४५५ जेठसुदी पूनम को हुआ था। माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था। ये जुलाहे का धधा करते थे। एक बार ये एक पहर-रात रहते गगाघाट की सीढियो पर जा पडे। उधर से गगा-स्नान करके लौटते समय स्वामी रामानन्दजी का पैर इनके सिर पर पड गया। आश्चर्य रामानन्दजी के मुँह से 'राम-राम' शब्द निकला। इन्होंने इसी नामराम को गुरुमत्र मान लिया और रामानन्दजी ने भी इन्हे शिष्यरूप मे स्वीकार कर लिया। (वे शूद्र को शिष्य नही बनाते थे।)

कबीर पढे-लिखे न होने पर भी मार्मिक कवि थे। इनको माननेवाले हिन्दू-मुस्लिम दोनो ही थे। एक बार झूठा रोजा, झूठी ईद कह देने पर उन्हे बादशाह सिकन्दर लोधी द्वारा गगा मे बहा दिया गया। तब इन्होंने कहा—

गग लहर मेरी टूटी जजीर,
मृगछाला पर बैठ कबीर।
कह कबीर कोउ सङ्ग न साथ।
जिसको राखत है रघुनाथ॥

इस चिन्तन के साथ ही इनके बधन खुल गये और ये कुछ ही क्षणो मे तट पर आ खडे हुए। इनकी रचनाओ मे बीजक, आदिग्रन्थ, साखी, शब्दावली, अखरावटी, ज्ञान-गुदडी आदि मुख्य है। कबीर अहिंसा, सत्य और सदाचार के प्रचारक थे और इन्हे वाह्याडम्बर से बडी चिढ थी। इस समय इनके पथ (कबीरपथ) को माननेवाले ८-९ लाख बताए जाते हैं।

—कल्याण सतअंक एवं श्रुति के आधार से।

११. महात्मा तुलसीदास—

इनका जन्म राजापुर गांव मे आत्माराम ब्राह्मण के घर, माता हुलसी के गर्भ से मूलनक्षत्र मे हुआ। मूलनक्षत्र मे जन्म के कारण इनको माता-पिता ने छोड दिया। ये छटपटा रहे थे। सयोग-वश वहाँ साधु नरहरिदासजी आगये और इन्हे ले गये, पाल-पोषकर वेद-पुराण, रामायण आदि पढाया। बाद मे इनका विवाह हुआ। स्त्री पर ये इतने मुग्ध हो गये कि उसे कभी पीहर नहीं भेजते थे। एकबार उनका साला आया और उनको बिना पूछे ही अपनी बहन को ले गया। पता चलते ही ससुराल के लिए जमुना की तेजधारा में कूद पडे। तैरते-तैरते थक गये। तब एक मुर्दे की टांग पकडकर पार पहुंचे। अँधेरी रात थी। ससुराल का दरवाजा बन्द था। अत ये दीवार पर लटकते हुए एक साँप को रस्सी समझ कर उनके

सहारे स्त्री के पास जा धटके। भय, लज्जा और क्रोध से कांपती हुई स्त्री ने कहा :—

हाड-मास को देह मम, ता पर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम-प्रति, अवसि मिटहि भव-भीति ॥

उन्हे ज्ञान हो गया एव साधु बनकर तीर्थों मे सत्सग करते हुए घूमने लगे। वि० स० १६३१ मे, अयोध्या मे रामायण की रचना आरम्भ की फिर उच्चकोटि के २१ ग्रन्थ और बनाये जिसमे से १२ ग्रन्थ वर्तमान मे मिलते हैं। इन्हें हिन्दी का शेक्सपियर और कालिदास कहा जाता है।

एक बार अकबर ने इन्हे चमत्कार दिखाने के लिए कहा और न दिखाने पर लालकिले मे बन्द करवा दिया। अचानक बन्दरो की सेना ने आकर किले मे त्राहि-त्राहि मचादी, (हनुमान का इष्ट था) अकबर ने माफी मांगी।

एक बार एक स्त्री का पति मर गया था। श्मशान जाते समय उसकी स्त्री ने कुटिया मे आकर इन्हे प्रणाम किया। इन्होंने सहजभाव मे कह दिया। 'सौभाग्यवती हो!' चिल्लाकर स्त्री ने कहा—

पति हमारा चल बसा, हम भी चालनहार।
तुलसी तुम्हरे वचन का, होगा कवन हवाल ॥

तुलसीदास जी ने मुर्दा मंगवाकर उसके सिर पर हाथ रखा और राम का ध्यान किया—

तुलसी मुर्दा मगाय के, दिया शीश पर हाथ।
हमतो कछु जाने नहीं, तुम जानो रघुनाथ ॥

कहा जाता है कि इतना कहते ही मुर्दा जीवित होगया। राम-भक्ति मे लीन महात्मा तुलसीदासजी का देहावसान वि० सवत् १६८०, श्रावण शुक्ल सप्तमी को काशी के (असीघाट) गगातट पर हुआ, जिसके विषय मे यह दोहा प्रसिद्ध है—

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से।

१२. सिखगुरु नानकदेवजी—

सिखो के दस गुरु हुए है। उनमे प्रथम गुरु नानकदेवजी थे। इनका जन्म 'राइभोई की तलवडी' (ननकाणा-साहिब) मे वेदी कालूचन्द पटवारी के घर माता तृप्ताजी के उदर से वैशाख सुदी ३ स० १५२६ को हुआ। गुरु नानक बचपन से ही बडे शान्त-स्वभाव के थे। एक दिन माता के आग्रह पर ये बच्चो मे खेलने गये। वहाँ इन्होंने बच्चो को पद्मा-सन से बैठा दिया और कहा—"सत्यकर्त्तार" कहते जाओ। पिता ने इन्हे पढने के लिए दो पडितो और एक मौलवी के पास भेजा, किन्तु इन्होंने अपने आत्मबल से तीनो उस्तादो को शिष्य बना लिया। एक बार पिता ने इन्हे कुछ सौदा लाने को कहा। इन्होंने सारे रुपये भूखे सतो को खिलाने मे खर्च कर दिये। घर आकर अपने पिता से इस सौदे को सच्चा सौदा बताया। पिता को बडा क्रोध आया और इन्हें काफी मारा-पीटा। इनकी बहिन 'नानकी' से यह नही देखा गया और वह इन्हे अपने घर (सुलतानपुर) ले गई। वहाँ ये मोदीखाने मे काम करने लगे।

सम्वत् १५४४ मे २४ जेठ को इनका विवाह मूलचदजी की सुपुत्री सुलक्षणा के साथ हुआ, जिससे इनके दो पुत्र (बाबा श्रीचन्द्र और बाबा लक्ष्मीदास) हुए।

मोदीखाने मे एक दिन आटा तोलते समय एक-दो-तीन आदि कहते-कहते जब तेरह का नाम आया तो "तेरा-तेरा" ही कहते गये (हे प्रभो ! मैं तेरा हू) और सारा आटा तोल दिया। मोदीखाने का कार्य छोडकर धर्मप्रचार मे लग गये।

स० १५५४ मे इन्होंने देशाटन प्रारम्भ किया। इनकी चार यात्राए विशेष प्रसिद्ध है—

(१) पूर्व मे हरिद्वार, देहली, नैमिषारण्य, अयोध्या, प्रयाग, काशी यावत् जगन्नाथपुरी। (२) दक्षिण मे सेतुबन्ध-रामेश्वर एव सिंहलद्वीप। (३) उत्तर मे सिक्किम, भूटान और तिब्बत। (४) पश्चिम मे रूम, बगदाद, ईरान, काबुल तथा बिलोचिस्तान होते हुए मुसलमानो के प्रसिद्ध तीर्थ मक्का पहुंचे। सभी जगह वाहेगुरु (परमात्मा) की अनन्य उपासना का उपदेश दिया। मक्के मे एक दिन ये काबे की तरफ पैर करके सो गये। जब काजी क्रुद्ध हुआ तो ये बोले—जिधर, अल्लाह न हो, मेरे पैर उधर कर दीजिए। काजी ने जिधर को इनके पैर फेरे काबा भी उधर ही फिर गया। २५ वर्ष भ्रमण करने के बाद गुरु नानक करतारपुर मे रहकर धर्म-प्रचार करने लगे।

स० १५९६ आसोज सुदी १० को इनका परलोकगमन हुआ। उस समय इनकी आयु लगभग ७० वर्ष की थी।

अन्तिम-संस्कार के समय हिन्दू और मुसलमानों मे विवाद खड़ा हो गया। जब वस्त्र उठाकर देखा तो इनका

शरीर ही नही मिला। अस्तु, आधा-आधा वस्त्र लेकर हिन्दुओ और मुसलमानो ने अपनी-अपनी विधि से अंतिम-संस्कार किया।

—कल्याण, संतअंक तथा
'सिखधर्म क्या कहता है?' के आधार से।

१३. संत श्रीतुकारामजी चैतन्य—

इनका जन्म सं० १६६५ मे पूना के पास देहू नामक ग्राम मे हुआ। इनकी माता का नाम कनकबाई और पिता का नाम बोलोजी था। इनके दो विवाह हुए। पहली स्त्री का नाम रक्खूबाई और दूसरी का जीजीबाई था। जीजीबाई का स्वभाव बडा चिडचिडा था। माता-पिता के वियोग के कारण १७ वर्ष की अवस्था मे ही इनको घर का सारा भार संभालना पडा। दुकान मे घाटे पर घाटा लगता गया और आखिर दीवाला निकल गया। इधर पहली स्त्री और पुत्र मर गये। अब इनका चित्त गृहस्थ-जीवन मे बिलकुल उचट गया और ये विरक्त होकर कभी पहाडो पर, कभी मंदिरो मे भजन-कीर्तन करने लगे। कीर्तन करते समय इनके मुख मे अभंगवाणी निकलने लगी। बडे-बडे विद्वान् इनके भक्त बन गये, लेकिन वेदान्त के एक प्रकाण्ड पंडित को एक शूद्र के मुख से श्रुत्यर्थबोधक अभंग का निकलना बहुत अखरा।

आखिर पंडित रामेश्वर भट्ट के दबाव मे इन्होंने अपने अभंगो की सारी बहियाँ इन्द्रायणी नदी के दह मे डाल दी और खुद अन्न-जल त्यागकर, विट्ठलनाथ के मंदिर के सामने ध्यान-मग्न होकर बैठ गये। कहा जाता है कि १३ दिन बाद भगवान ने दर्शन देकर कहा—"उठो और धर्म प्रचार करो।

तुम्हारे सारे अभग भक्तो के पास सुरक्षित है।" (ये अभग आज भी सत साहित्य मे बहुत प्रसिद्ध है) इधर पंडित रामेश्वर भट्ट के मारे शरीर मे जलन पैदा हो गई। वह इनकी शरण मे आया और भक्त बना। तुकारामजी का धर्म प्रचार बढा। कई बार छत्रपति शिवाजी भी इनके सत्सग मे आये थे। स० १७०६ चैत्र कृष्ण २ को इनका स्वर्गवास हुआ जनश्रुति के अनुसार देहावसान के बाद इनका शरीर नजर नही आया।

—कल्याण सतअक के आधार पर।

१४ संत दादूदयालजी—

वि० स० १६०१ मे अहमदाबाद के लोदीराम नामक एक ब्राह्मण को साबरमती नदी मे तैरता हुआ एक सदूक मिला और उसमे से एक हसता हुआ बालक निकला। यही बालक आगे जाकर सत दादूजी कहलाया। कहा जाता है कि ११ वर्ष की आयु मे श्रीकृष्ण ने इन्हे दर्शन और तत्त्वज्ञान दिया था। एक बार ये घर से निकल गये परन्तु घरवालो ने इन्हे वापस लाकर विवाह-बधन मे जकड दिया। १६ वर्ष की आयु मे ये फिर निकल पडे। इस बार ये सामर (जयपुर) मे जा छिपे और रुई धुनने का धधा करते हुए १२ वर्ष तक कठिन तपस्या मे लगे रहे। ये मुख्यतया "लय-योग" मे लीन रहते थे और 'निरजन-निराकार' पर जोर देते थे।

दादूजी के रज्जबदासजी-सुन्दरदासजी आदि १५२ शिष्य हुए जिनमे से १०० तो विरक्त रहे और शेष थाभाधारी कहलाने लगे। ५२ स्थानो मे उनके दादू द्वारे बने हुए है।

दादूजी ने अपने नाम से कोई पथ या सम्प्रदाय प्रसिद्ध

नही किया। लेकिन पीछे से दादूजी के अनुयायी 'दादूपथी' कहलाने लगे।

दादूजी का प्रयाण स० १६६० मे नारायणा नामक स्थान मे हुआ। यह स्थान दादूपथियो का प्रधान तीर्थ स्थान कहलाता है।

—कल्याण 'सतअक' के आधार पर।

७ कृष्ण की परमभक्त मीराबाई—

ये मेडतिया राजपूत राठोड जोधा जी की प्रपौत्री, दूदाजी की पौत्री एव रतनसी की पुत्री थी।

इनका जन्म स० १५७३ के लगभग चौकडी (मारवाड) मे हुआ। इनके ताऊ के लडके भाई वीर जयमल कृष्ण-भक्त थे। बहिन-भाई बचपन से ही कृष्ण-भक्ति मे विशेष रुचि लेते थे। एक साधु के पास कृष्ण की सुन्दर मूर्ति देखकर मीरा ने बाल-हठ किया और उससे मूर्ति प्राप्त करली।

मीरा का विवाह महाराणा सागा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ। किन्तु कुछ समय बाद उनका देहान्त हो गया। अब तो कृष्ण ही मीरा के एक मात्र प्राणाधार रह गये। मीरा कृष्ण-प्रेम मे लीन होकर मन्दिरो मे कीर्तन और नृत्य करने लगी। इनके देवर राणा रतनसिंह को मीरा का इस प्रकार स्वतन्त्ररूप मे घूमना बहुत अनुचित लगा। उन्होंने इनको बहुत कहा-सुना और डराया-धमकाया भी, लेकिन जब ये किसी तरह नही मानी तब इनको जहर का प्याला दिया गया। जिसे ये भगवान् का चरणामृत मानकर पी गई। फिर पिटारे मे एक साँप भेजा गया जो इनके लिए सालिग्राम की

मूर्ति बन गया। आखिर मीरा एकदिन घर से निकल गई और वृंदावन आदि स्थानो मे घूमती हुई द्वारका पहुँच गई। कहा जाता है कि वही स० १६६० मे मीरा रणछोडदासजी की मूर्त्ति मे विलीन हो गई।

'नरसी जी का मायरा' और 'गीतगोविंद—टीका' आदि मीरा की रचनाएँ मानी जाती हैं। मीरा के भजन बहुत ही लोकप्रिय हैं।

—'कल्याण' सतअक के आधार पर।

२५. आर्यसमाज के संस्थापक स्वामीदयानंद सरस्वती—

स्वामीजी का जन्म स० १८८२ मे, टकारा (गुजरात) मे हुआ। इनका जन्म-नाम मूलशंकर था।

कहा जाता है कि १४ वर्ष की आयु मे एक बार ये शिवरात्रि का व्रत रखकर शिवमंदिर मे रात्रि-जागरण कर रहे थे। शिवलिङ्ग पर चढाई हुई सामग्री को चूहे खाने लगे एव उस पर मल-मूत्र करने लगे। यह देखकर इनकी मूर्ति-पूजा से श्रद्धा उठ गई और इनके मन मे यह विचार हुआ कि जब यह शिवमूर्ति स्वय अपनी रक्षा ही नही कर पा रही है तो अपने भक्तो की क्या रक्षा करेगी! अस्तु, उसी क्षण इन्होंने सच्चे शिव की खोज करने का निश्चय कर लिया। अब ये विरक्त रहने लगे। फिर भी माता-पिता ने इनका जबर्दस्ती विवाह रचाया। विवाह के समय इनकी १४ वर्ष की बहिन मर गई। इस घटना से इनका विरक्तिभाव एकदम बढ गया और विवाह को छोडकर घर से निकल गए। पूर्णानंदजी के पास जाकर सन्यास ले लिया और दूर-दूर तक भ्रमण करते हुए इन्होंने योगियो और सिद्धो से अनेक विद्याएँ प्राप्त की।

मथुरा मे प्रज्ञाचक्षु स्वामी विवेकानंदजी के पास वेदाध्ययन किया फिर उनकी आज्ञानुसार भारत भर मे घूमकर वेदो का खूब प्रचार किया एव 'बम्बई मे आर्यसमाज' की स्थापना की।

इनकी निर्भीकता अद्भुत थी। उपदेश के समय हर एक सत्य बात बेधडक होकर कह डालते थे। कहा जाता है कि इसी कारण जोधपुर मे इन्हें विप दिया गया था। असह्य-वेदना हुई, फिर भी ये समभाव मे रहे और सन् १८८३ दीवाली की रात को समाधि-मरण प्राप्त किया।

—कल्याण संतअंक तथा अध्ययन के आधार से।



साधुओं के गुण

२०

१. चरण गुण—

वय-समणधम्म-सजम, वेयावच्च च वभगुत्तीओ।
नाणाइतिय तव, कोहनिग्गहाइ चरणमेय।

—ओघनिर्युक्ति-भाष्य गाथा २

साधुओ द्वारा निरन्तर सेवन करने योग्य चारित्रसम्बन्धी नियमो को चरणगुण कहते है। चरणगुण सत्तर माने गये हैं। (ये चरणसत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—५ महाव्रत,, १० प्रकार का श्रमणधर्म, १७ प्रकार का सयम, १० प्रकार की वयावृत्त्य, ब्रह्मचर्य की ९ गुप्तियाँ, ज्ञानादिरत्नत्रिक, १२ प्रकार का तप और ४ कषाय का निग्रह।

२ करण गुण—

पिंडविसोही समिई, भावण-पडिमा य इन्दियनिरोही।
पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करण तु॥

—ओघनिर्युक्ति-भाष्यगाथा ३

प्रयोजन उत्पन्न होने पर साधुओं द्वारा जिनका सेवन किया जाय, वे करणगुण कहलाते है। करणगुण भी ७० हैं। (ये करण-सत्तरी के नाम से प्रसिद्ध है) यथा—४ प्रकार की पिण्डविशुद्धि ५ समितियां, १२ भावनाएँ, १२ प्रतिमाएँ ५ इन्द्रियों का निग्रह, ४ अभिग्रह।[1]
२५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्तियाँ और,

---

१ इसका विस्तृत विवेचन चारित्र-प्रकाश पुंज ९ में देखिए।

मथुरा मे प्रज्ञाचक्षु स्वामी विवेकानंदजी के पास वेदाध्ययन किया फिर उनकी आज्ञानुसार भारत भर मे घूमकर वेदो का खूब प्रचार किया एव 'बम्बई मे आर्यसमाज' की स्थापना की।

इनकी निर्भीकता अद्भुत थी। उपदेश के समय हर एक सत्य बात बेधडक होकर कह डालते थे। कहा जाता है कि इसी कारण जोधपुर मे इन्हें विप दिया गया था। असह्य-वेदना हुई,फिर भी ये समभाव मे रहे और सन् १८८३ दीवाली की रात को समाधि-मरण प्राप्त किया।

—कल्याण संतअक तथा अध्ययन के आधार से।



साधुओं के गुण

चरण गुण—

वय-समणधम्म-सजम, वेयावच्च च वभगुत्तीओ।
नाणाइतिय तव, कोहनिग्गहाइ चरणमेय।

—ओघनिर्युक्ति-भाष्य गाथा २

साधुओं द्वारा निरन्तर सेवन करने योग्य चारित्रसम्बन्धी नियमों को चरणगुण कहते हैं। चरणगुण सत्तर माने गये हैं। (ये चरणसत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—५ महाव्रत,, १० प्रकार का श्रमणधर्म, १७ प्रकार का सयम, १० प्रकार की वैयावृत्त्य, ब्रह्मचर्य की ९ गुप्तियाँ, ज्ञानादिरत्नत्रिक, १२ प्रकार का तप और ४ कषाय का निग्रह।

२. करण गुण—

पिंडविसोही समिई, भावण-पडिमा य इन्दियनिरोहो।
पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करण तु॥

—ओघनिर्युक्ति-भाष्यगाथा ३

प्रयोजन उत्पन्न होने पर साधुओं द्वारा जिनका सेवन किया जाय, वे करणगुण कहलाते हैं करणगुण भी ७० हैं। (ये करण-सत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—४ प्रकार की पिण्डविशुद्धि ५ समितियाँ, १२ भावनाएँ, १२ प्रतिमाएँ ५ इन्द्रियों का निग्रह, २५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्तियाँ और, ४ अभिग्रह।[1]

---

१ इनका विस्तृत विवेचन चारित्र-प्रकाश पुंज ६ में देखिए।

३. साधुदर्शन—

(क) साधूना दर्शन पुण्य, तीर्थभूता हि साधव,
तीर्थं पुनाति कालेन, सद्य. साधुसमागम. ।

—चाणक्यनीति १२।७

साधुओ का दर्शन पवित्र है क्योकि साधु तीर्थरूप होते है। तीर्थ तो कालान्तर मे पवित्र करता है, किन्तु साधुओ का समागम तत्काल ही तार देता है।

(ख) न ह्यब्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिलामया ।
ते पुनन्त्युरुकालेन, दर्शनादेव साधव ॥

—श्रीमद्भागवत १०।४८।२१

वास्तव मे न तो नदी आदि के जल से युक्त तीर्थ है, न मिट्टी-पत्थर से बनी हुई मूर्तियां देवता है। वे बहुत काल के पश्चात् पवित्र करते है, किन्तु साधुजन दर्शन-मात्र से पावन कर देते है।

(ग) तनकर मनकर वचनकर, देत न काहू दुख ।
तुलसी पातक झडत है, देखत उनका मुख ॥
मुख देखत पातक झडे, पाप विलय हो जाय ।
तुलसी ऐसे सन्तजन, पूर्व भाग्य मिल जाय ॥

—तुलसी दोहावली

(घ) साधु-दर्शन लाभ है, बडभागी दरसाय ।
जिनरग शूली की सजा, काटे ही टल जाय ।

—हिन्दी दोहा

साधु-संगति

२१

१ चन्दन शीतल लोके, चन्दनादपि चन्द्रमा ।
चन्द्र-चन्दनयोर्मध्ये, शीतला साधुसगति ।
चन्दन जगत मे शीतल है और चन्दन से भी चन्द्रमा शीतल है। चन्द्र और चन्दन-इन दोनो से भी साधुओ की सगति अत्यधिक शीतल है।

२ ना सुख पढिया पडिता, ना सुख भूप भया ।
सुख है वीच विचार दे, साधुसग पया ॥
ना सुख वीच गृहस्थ दे, ना सुख छोड गया ।
सुख है वीच विचार दे, साधु सग पया ॥
—पजावी पद्य

3. सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापिहु के घर होय ।
सत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय ॥

४ तात मिले पुनि मात मिले,
सुत भ्रात मिले युवती सुखदाई ।
राज मिले गज-बाज मिले,
सब साज मिले मन वछित आई ।
लोक मिले परलोक मिले,
सुरलोक मिले बैकुण्ठ मे जाई ।

सुन्दर आय मिले सवही,
इक दुर्लभ - सतसमागम भाई।

५. कोटि जन्म की पुण्यकमाई तव सन्तन को संगति पाई।
सतसगति जन पावे जवही, आवागमन मिटावे तवही॥

६. सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणे य सजमे।
अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी॥
—भगवती २।५

साधुसग से धर्मश्रवण, धर्मश्रवण से तत्त्वज्ञान, तत्त्वज्ञान से विज्ञान-विशिष्ट तत्त्वबोध, विज्ञान से प्रत्याख्यान-सासारिक पदार्थों से विरक्ति, प्रत्याख्यान से सयम, सयम से अनाश्रव-नवीन कर्म का अभाव, अनाश्रव से तप, तप से व्यवदान (पूर्व-वद्ध कर्मों का नाश,) व्यवदान से निष्कर्मता-सर्वथा कर्मरहित स्थिति और निष्कर्मता से सिद्धि—अर्थात् मुक्तस्थिति प्राप्त होती है।

७. गिहिसंथव न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं संथव।
—दशवैकालिक ८।५३

गृहस्थो-ससारियो का परिचय नही करना चाहिए, किन्तु साधुओ का सत्सग करना चाहिए।

८. संगति साधुन की करिये, कपटी लोगन ने डरिये।
—निपट निरंजन



२२ संतों का संताप

१ मत सताया सतदास, तेण सताया दीन।
गुप्तमार अतीन की, हो जाये तेरा-तीन।

—मलदास

२ एक भक्त रामायण पढ रहा था। पढने मे स्खलना होने से हनुमान ने (जो रामकथा मे सदा उपस्थित रहते हैं) उसके मुँह पर जोर से थप्पड मार दिया। फिर राम के दरबार मे गये तो मुँह सूजा हुआ देखा। पूछने पर राम ने कहा, तूने ही तो मारा है।

—वैदिक रूपक

३ संत सताया जात है, नाम धाम अरु वंश,
पीपा! परतख देख लो! जादव-कौरव-कंस।

४ आगरा के एकाउंटेंट जनरल के पास योगी ने भिक्षा मांगी। उत्तर मे कहा—विष्ठा खाओ! योगी बोला—जा तुझे विष्ठा ही मिलेगी। बस, उसी दिन से खाते-पीते मुह मे से सदा विष्ठा निकलने लगी।

५ आगरा के जयनन्द-कान्तिदास से किसी योगी ने कम्बल मांगा। उसने कहा आग लगे! बस आग ही आग

बरसने लगी एव बारह महीनो तक बहुत हैरान होना पडा।

६. एग इसि हणमाणे अणते जीवे हणइ।

—भगवती ६।३४

एक अहिंसक ऋषि की हत्या करनेवाला एक प्रकार से अनन्त जीवो की हिंसा करनेवाला होता है।



२२ साधुओं की गोचरी

१ भिक्खावित्ती सुहावहा। —उत्तराध्ययन ३५।१५

भिक्षावृत्ति सुख देनेवाली है।

२. उपवासात् पर भैक्ष्यम्। —वशिष्ठस्मृति

मर्यादानुसार की हुई भिक्षा से जीवन का निर्वाह करना उपवास से भी बढ़कर है।

३. धीरा हु भिक्खायरियं चरंति।

—उत्तराध्ययन १४।३५

धीर पुरुष ही भिक्षाचर्या का अनुसरण करते हैं।

४ सव्वं से जाइयं होई, नत्थि किंचि अजाइयं।

—उत्तराध्ययन २।२८

साधु की हर एक वस्तु मांगी हुई होती है, बिना मांगी कुछ भी नहीं होती।

५. अहो! जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया।

—दशवैकालिक ५।१।९२

आश्चर्य है कि भगवान ने साधुओं की भिक्षावृत्ति पापरहित कही है।

६ अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्करं।
—उत्तराध्ययन १६।२७

निरवद्य एवं निर्दोष भिक्षा का ग्रहण करना भी दुष्कर है।

७ अकप्पियं न गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं।
—दशवैकालिक ५।१।२७

साधु अकल्पनीय-सदोष वस्तु नहीं ले एवं कल्पनीय ग्रहण करे।

८ एकान्नं नैव भोक्तव्यं, बृहस्पतिसमादपि।
—अत्रिस्मृति

साधु को सदा एक ही कुल का भोजन नहीं लेना चाहिए, चाहे वह कुल बृहस्पति जैसों का भी क्यों न हो।

६. अनग्निरनिकेत स्याद्, ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।
—मनुस्मृति ६।४३

मुनि अग्नि का स्पर्श न करे, घर में न रहे, मात्र भिक्षा के लिए ग्राम में जाये।

१०. समणेण भगवया महावीरेण, समणाणं निग्गंथाणं नवकोडीपरिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते, तं जहा—न हणइ, न हणावेइ, हणंतं नाणुजाणेइ। न पयइ, न पयावेइ पयंतं नाणुजाणइ। न किणइ, न किणावेइ, किणंतं नाणुजाणइ। —स्थानांग ६।६८१

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नवकोटि-विशुद्ध भिक्षा कही है—साधु आहार आदि के लिए न तो हिंसा करता, न करवाता और न करने वाले का अनुमोदन

करना। न स्वयं आहार आदि पकाना, न पकवाना और न पकानेवाले का अनुमोदन करता, न स्वयं भोजन आदि खरीदता, न खरीदवाता और न खरीदनेवाले का अनुमोदन करता।

११ उच्च-नीच-मज्झिमकुले अडमाणे। —अंतकृद्दशावर्ग ६, अ० १५

इन्द्रभूति मुनि ऊंच-नीच-मध्यम कुल में पर्यटन करते हुए।

१२ जायाए घासमेसिज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए। —उत्तराध्ययन ८।११

संयमयात्रा को निभाने के लिए मुनि को आहार की गवेषणा करनी चाहिए।

१३ अदीणो वित्तिमेसिज्जा। —दशवैकालिक ५।२।२६

साधु को अदीनवृत्ति से आवश्यक वस्तुओं की गवेषणा करनी चाहिए।

१४ लाभुत्ति न मज्जिज्जा, अलाभुत्ति न सोएज्जा। —आचारांग २।११४-११५

साधु को इष्टवस्तु के मिलने पर अभिमान नहीं करना चाहिए और न मिलने पर शोक नहीं करना चाहिए।

१५. अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत्। —मनुस्मृति ६।५७

भिक्षा न मिलने पर विषाद न करे एवं मिलने पर हर्ष न मनावे।

१६. लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज पडिए।

—उत्तराध्ययन २।३०

आहार मिलने या न मिलने पर बुद्धिमान साधु खेद न करे।

१७. अज्जेवाह ण लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।

—उत्तराध्ययन २।३१

आहार आदि न मिलने पर साधु विचार करे की मुझे आज आहार नही मिला तो सभवत कल मिल जायेगा।

★

:४ गोचरी के भेद

१. छव्विहा गोयरच्चरिया पण्णत्ता, त जहा—पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया, पतगवीहिया, सवुक्कवट्टा, गतुपच्चागया ।

—स्थानाग ६।५१४

छ प्रकार की गोचरी कही है—(१) पेटा (२) अर्धपेटा, (३) गोमूत्रिका, (४) पतङ्गवीथिका, (५) शम्बूकावर्ता, (६) गतप्रत्यागता ।

(उत्तराध्ययन ३०।१६ मे भी यह वर्णन है)

२. त्रिधा भिक्षपि तत्राद्या, सर्वसम्पत्करी मता ।
द्वितीया पौरुषघ्नीस्याद्, वृत्तिभिक्षा तथान्तिमा ॥

—हितोपदेश २।२०

भिक्षा तीन तरह की होती है—

(१) सर्वसम्पत्करी—साधु को निर्दोष वस्तु देना ।
(२) पौरुषघ्नी—साधु को सदोषवस्तु देना ।
(३) वृत्ति—अन्धे, बहरे आदि को कुछ देना ।

✱

२५ गोचरी के नियम

१. पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे।
वज्जंतो बीयहरियाइं, पाणे य दगमट्टियं॥

—दशवैकालिक ५।१।३

मुनि युगमात्र भूमि को देखता हुआ सचित्तबीज, हरित, द्वीन्द्रियादि प्राणी, जल और मिट्टी से बचता हुआ चले।

२ दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया।

—दशवैकालिक ५।१।१४

दवदवाहट करता हुआ, बातें करता हुआ एवं हंसता हुआ न चले।

३. तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
तं उज्जुयं न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे॥

—दशवैकालिक ५।२।७

हंस-काग आदि पक्षी दाना चुग रहे हों तो मुनि उनके बीच में से न निकले। उन्हें भय न हो, इस प्रकार यतनपूर्वक जाये।

४. न चरेज्ज वासे वासंते, महियाए वा पडंतिए।
महावाए व वायन्ते, तिरिच्छसंपाइमेसु वा॥

—दशवैकालिक ५।१।८

मुनि वृष्टि बरसते समय, ओस पड़ते समय, जोर से हवा—आँधी चलते समय एवं अल आदि सूक्ष्म जीव गिरते समय गोचरी न जाए।

५. समण माहण वावि, किविण वा वणीमग।
उवसकमत भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व सजए।
तमइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खुगोयरे।
एगतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज सजए॥
—दशवैकालिक ५।२।१०-११

श्रमण—ब्राह्मण, कृपण एवं भिखारी आदि अन्न-पानी की प्राप्ति के लिए पहले गृहस्थ के घर में गये हों तो उन्हें लांघ कर घर में प्रवेश न करे तथा दाता और भिक्षुओं की दृष्टि पड़े, वहाँ खड़ा न रहकर एकान्त में ठहरे।

६. गोयरग्गपविट्ठो य, न निसीएज्ज कत्थई।
कह च न पवधिज्जा चिट्ठित्ताण व सजए॥
—दशवैकालिक ५।२।८

गोचरी गया हुआ मुनि (विशेष कारण के सिवा) गृहस्थ के घर में न बैठे और न खड़ा रहकर धर्मकथा करे।

७ सयणासणवत्थ वा, भत्त पाण व सजए।
अदितस्स न कुप्पिज्जा, पच्चक्खे वि य दीसओ॥
—दशवैकालिक ५।२।२८

शयन, आसन, वस्त्र, अन्न और पानी प्रत्यक्ष सामने दीख रहा है, फिर भी यदि दाता न दे तो साधु उस पर क्रोध न करे।

८ निट्ठाण रसनिज्जूढ, भद्दग पावग ति वा।
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभ न निद्दिसे ॥

—दशवैकालिक ८।२२

आहार सरल मिला या नीरस मिला, अच्छा मिला या बुरा मिला तथा मिला या नही मिला। साधु को यह आहार सम्बन्धी बात पूछने पर या बिना पूछे गृहस्थ के आगे नही कहनी चाहिए।

६. कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकाल च विवज्जित्ता, काले काल समायरे ॥४॥
अकाले चरसी भिक्खु, काल न पडिलेहसि।
अप्पाणं च किलामेसि, सनिवेस च गरिहसि ॥५॥

—दशवैकालिक ५।१

साधु भोजन बनने के समय गोचरी जाए एव यथासमय वापिस आ जाए। अकाल का त्याग करके सारा काम यथा-समय करे। हे मुने! यदि तू असमय भिक्षा के लिए जायेगा एव समय का ध्यान न रखेगा तो आहार आदि न मिलने से दुःखी होगा एव द्वेषवश गाव के लोगो की निन्दा करेगा।

१० अप्पे सिया भोयणजाए, बहुउज्झियधम्मिए।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पई तारिस।

—दशवैकालिक ५।१।७४

(सीताफल—इक्षुखण्ड आदि) जिन फलो मे खाने योग्य वस्तु थोडी हो और फेंकने लायक अधिक हो, ऐसे फल दातार देना चाहे तो साधु कहे कि ऐसी वस्तु मुझे नही कल्पती।

११ विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे।

—दशवैकालिक ५।१।८८

गोचरी करके अपने स्थान में प्रवेश करते समय मुनि "मत्थएण वंदामि निसहिया—निसहिया" ऐसे सविनय बोले। फिर गुरु के समीप आकर इरियावहिय पडिक्कमे एवं गोचरी में लगे हुए दोषों की आलोचना करे।

१२. एककालं चरेद्भैक्षं, न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यति-र्विषयेष्वपि सज्जति।
विधूमे सन्नमुसले, व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसंपाते, भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्।
—मनुस्मृति ६।५५-५६

एक बार भिक्षा करे, अधिक न करे। अधिक खाने में लीन साधु स्त्री आदि के विषयों में आसक्त हो जाता है।

रसोई का धुआँ एवं मुसलों से अन्न कूटने का शब्द बन्द हो जाने पर चूल्हे की आग बुझ जाने पर, गृहस्थों के भोजन कर चुकने पर तथा अवशिष्ट भोजन को पात्र में रख देने पर मुनि भिक्षा ग्रहण करें।

१३ गोचरी सम्बन्धी ४२ दोष—

आहाकम्मुद्देसिय, पूइकम्मे य मीसजाए य।
ठवणा पाहुडियाए, पाओयर कीत पामिच्चे ॥६२॥
परियट्टिए अभिहडे, उब्भिन्न मालोहडे इ य।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ॥६३॥
धाई दूई निमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छा य।
कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए ॥४०८॥
पुव्विंपच्छासंथव, विज्जा मंते य चुण्ण-जोगे य।
उप्पायणाइ-दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य ॥४०९॥

संकिय मक्खिय निक्खित्त, पिहिय साहरिय दायगुम्मिस्से।
अपरिणय लित्त छड्डिय, एसणदोसा दस हवंति॥
—पिण्डनिर्युक्ति

साधु को आहार-पानी की एषणा करते समय गवेषणा व ग्रहणैषणा के बयालीस दोषों का वर्जन करना चाहिए।

गवेषणा के बत्तीस दोष उद्गम और उत्पादन की अपेक्षा से दो भागों में विभक्त हैं। उद्गम के सोलह दोषों का निमित्त गृहस्थ (देनेवाला) होता है और उत्पादन के सोलह दोषों का निमित्त साधु (लेनेवाला) होता है।

सोलह उद्गम दोष —

(१) आधाकर्म, (२) औद्देशिक
(३) पूतिकर्म, (४) मिश्रजात
(५) स्थापना (६) प्राभृतिका
(७) प्रादुष्करण (८) क्रीत
(९) प्रामित्यक (१०) परिवर्तित
(११) अभ्याहृत (१२) उद्भिन्न
(१३) मालापहृत (१४) आच्छेद्य
(१५) अनिसृष्ट (१६) अध्यवपूरक।

सोलह उत्पादनदोष—

(१) धात्रीपिण्ड (२) दूतीपिण्ड
(३) निमित्तपिण्ड (४) आजीविकापिण्ड
(५) वनीपकपिण्ड (६) चिकित्सापिण्ड
(७) क्रोधपिण्ड (८) मानपिण्ड
(९) मायापिण्ड (१०) लोभपिण्ड
(११) पूर्वपश्चात् संस्तवपिण्ड (१२) विद्याप्रयोग
(१३) मन्त्रप्रयोग (१४) चूर्णप्रयोग
(१५) योगप्रयोग (१६) मूलकर्मप्रयोग।

ग्रहणैषणा के दस दोष —

गवेषणा के अनन्तर आहार आदि ग्रहण करते समय साधु को निम्नोक्त दस दोषों का परिहार करना आवश्यक है—

(१) शंकित, (२) म्रक्षित, (३) निक्षिप्त (४) पिहित, (५) संहृत, (६) दातृकर्म, (७) उन्मिश्र, (८) अपरिणत, (९) लिप्त, (१०) छर्दित।

(बयालीस दोषों का विवेचन "चारित्रप्रकाश पुंज २, प्रश्न १५" में दिया गया है।)

*

२६ साधु का आहार

१ पंत लूह सेवति, वीरा सम्मतदसिणो।

—आचारांग २।६

सम्यग्दर्शी वीरपुरुष नीरस और सूक्ष्म आहार का सेवन करते हैं।

२. तित्तग व कडुअ व कसाय, अबिल व महुर लवण वा।
एयलद्धमण्णत्थपउत्ता, महुघय व भुजिज्ज सजए॥

—दशवैकालिक ५।१।६७

तीखा, कडुवा, खट्टा, मीठा तथा खारा किसी भी प्रकार का आहार जो शास्त्रोक्त विधि से प्राप्त हुआ है, उसे मधु-घृत के समान मानकर साधु को समभाव से खाना चाहिये।

३. सेभिक्खू वा भिक्खूणी वा असण वा पाण वा खाइमं वा साइम वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिण हणुय सचारेज्जा आसाएमाणे। दाहिणाओ वा हणुयाओ वाम हणुय णो सच्चारेज्जा आसायमाणे। से अणासाय-माणे लाघविय आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ।

—आचारांग ८।६

साधु अथवा साध्वी अशनादिक का आहार करते समय स्वाद लेने के लिए उस आहार को बायी दाढ से दाहिनी दाढ की ओर न ले जाये और दाहिनी दाढ से बायी दाढ की ओर न

ले जाये। स्वाद न लेने से कर्मों का हल्कापन होता है एवं तपस्या होती है।

४ अप्पपिंडासि पाणासि, अप्पं भासेज्ज सुव्वए।

—सूत्रकृतांग ८।२५

सुव्रती मुनि अल्प खाए, अल्प पीवे और अल्प बोले।

५. मियं कालेण भक्खए। —उत्तराध्ययन १।३२

समय होने पर भी साधु को परिमित भोजन करना चाहिए।

६ तहा भोतव्वं जहा से जायामाता य भवति,
न य भवति विब्भमो, न भंसणा य धम्मस्स।

—प्रश्नव्याकरण २।४

ऐसा हित-मित भोजन करना चाहिए, जो जीवनयात्रा एवं संयमयात्रा के लिए उपयोगी हो सके और जिससे न किसी प्रकार का विभ्रम हो और न धर्म की भ्रंसना हो।

७ जे भिक्खू आयरिय-उवज्झाएहिं अदिन्नं आहारं आहारेइ आहारेंतं वा साइज्जइ। —नीशीथ ४।२२

जो साधु, आचार्य-उपाध्याय का बिना दिया अर्थात् उन्हें पूछे बिना आहार करे या करते हुए का समर्थन करे तो उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

८ असंविभागी न हु तस्स मोक्खो।

—दशवैकालिक ९।२।२३

साथी मुनियों को हिस्सा दिये बिना आहारादि का उपयोग करनेवाले को मुक्ति या मोक्ष नहीं मिलता।

९ हजरत इब्राहिम ने एक फकीर से पूछा—सच्चा संत कौन है?

फकीर—मिला तो खाया, नही तो सतोष।

इब्राहिम—ऐसे तो कुत्ते भी होते है।

फकीर—तो ?

इब्राहिम—मिला तो बाट खाया, नही तो सतोष।

१० जे भिक्खू अन्नउत्थियं वा गारत्थियं वा असण पाण खाइम देइ, देयत वा साइज्जइ।

—निशीथ १५।७८

जो साधु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को असन आदि दे या देते हुए को अच्छा समझे तो उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।



आहार किसलिए ?

२७

१. आयगुत्ते सया वीरे, जायामायाइ जावए।
—आचारांग ३।३

आत्मगुप्त वीरपुरुष संयमयात्रा के निर्वाहार्थ आवश्यकता-मात्र आहार से जीवन यापन करे।

२. भारस्स जाया मुणि भुंजएज्जा।
—सूत्रकृतांग ७।२९

मुनि को केवल संयमयात्रा को निभाने के लिए आहार करना चाहिए।

३. अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादन्ते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी॥
—उत्तराध्ययन ३५।१७

लोलुपतारहित, रसगृद्धिरहित, जिह्वेन्द्रिय को दमन करने वाला एवं भोजन-संग्रह की मूर्च्छा से रहित महामुनि स्वाद के लिए भोजन न करे, किन्तु संयमयात्रा का निर्वाह करने के लिए करे।

४. संयम भार-वहणट्ठयाए बिलमिव पन्नगभूएण।
अप्पाणेण आहारमाहारेइ।
—भगवती ७।१

साधु-साध्वी संयमभार का निर्वाह करने के लिए, बिल में साँप की तरह उतरकर [illegible] में आहार को [illegible]।

५. अक्खोवजणाणुलेवणभूयं सजमजायामायणिमित्त,
सजमभारवहणट्ठयाए भुञ्जेजा पाणधारणट्ठाए।
— प्रश्नव्याकरण २।१

जैसे-गाडी चलाने के लिए पहियो के अजन (स्निग्ध-तेलादि) लगाया जाता है, घाव को ठीक करने के लिए उस पर लेप-मरहम लगाया जाता है, उसी प्रकार साधु को सयमयात्रा निभाने के लिए सयम-भार को वहने के लिए तथा प्राणो को धारण करने के लिए भोजन करना चाहिए।

६ शरीरं व्रणवद् ज्ञेय-मन्न च व्रणलेपनम्।
व्रणशोधनवत् स्नान, वस्त्रं च व्रणपट्टवत्॥
—चैतन्य महाप्रभु

शरीर व्रण-घाव के समान है, अन्न उस पर मरहम का लेप है। स्नान व्रण को साफ करनेवाला है और वस्त्र व्रणपट्टी के तुल्य है।

७ छहि ठाणेहि समणे निग्गथे आहारमाहारेमाणे णाइ-
क्कमइ, तं जहा—
वेयण - वेयावच्चे, इरियट्ठाए य सजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठ पुण धम्मचिताए।
—स्थानाग ६ तथा उत्तराध्ययन २६।३३

छ कारणो से आहार करता हुआ साधु प्रभु-आज्ञा का उल्लघन नही करता। वे कारण ये हैं—१ क्षुधावेदनीय को शान्त करने के लिये, २ वैयावृत्त्य-सेवा करने के लिये, ३. ईर्यासमिति का पालन करने के लिए, ४. सयम पालने के लिये, ५. प्राण-रक्षा के लिए, ६. धर्म का चिन्तन करने के लिए।

८ छहिठाणेहिं समणे निग्गथे आहार वोच्छिदे माणे णाइक्कमई, त जहा—

आयके उवसग्गे, तितिक्खणे बभचेरगुत्तीसु।

पाणीदया तवेहेउ, सरीरवोच्छेयणट्ठाए।

—स्थानाग ६ तथा उत्तराध्ययन २६।३५

छ कारणो से श्रमण-निर्ग्रन्थ आहार का त्याग करता हुआ। प्रभुआज्ञा का उल्लघन नही करता। जैसे—१ रोग एव उपसर्ग होने पर, २. ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकने पर, ३ जीवदया न पल सकने पर ४. तपस्या करने के लिए ५ अनशनादि द्वारा शरीर छोडने के लिए।

९. शरीर का परिवहन करने मे ग्लानि होने लगे, तब साधु को चतुर्थ-षष्ठ आदि तप करके आहार को घटाने लग जाना चाहिए, अर्थात् सलेखना करनी चाहिए।

—आचाराग ८।१



साधुओं का निवास स्थान

१. मुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व एगओ।
पइरिक्के परकडे वा, वास तत्थाऽभिरोयए ॥६॥
फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।
तत्थ सकप्पए वास, भिक्खू परमसजए ॥७॥
न सय गिहाइ कुविज्जा, नेव अन्नेहि कारए।
गिहकम्मसमारम्भे, भूयाण दिस्सए वहो ॥८॥

—उत्तराध्ययन ३५

साधु श्मशान, सूनाघर, वृक्ष के नीचे अथवा परकृत (गृहस्थ ने जो अपने लिए बनाया) एकान्तस्थान मे एकाकी रहना पसद करे ॥६॥

जो स्थान प्रासुक हो, किसी को पीडाकारी न हो, एव जहाँ स्त्रियो का उपद्रव न हो, परम सयमी साधु उस स्थान में निवास करे ॥७॥

साधु स्वय घर आदि न बनाये और दूसरो से न बनवाये, क्योंकि गृह आदि कार्य के समारम्भ में प्राणियो की हिंसा प्रत्यक्ष दिखाई देती है ॥८॥

मणोहर चित्तहर, मल्लधूवेण वासिय।
सकवाड पडुरुल्लोय, मणसा वि न पत्यए ॥
—उत्तराध्ययन ३५।४

मुनि ऐसे आश्रय की मनसे इच्छा न करे, जो मनोहर हो, जिसमें घृणित चित्र हो, जो माला और धूप से सुगन्धित हो, कवाट सहित हो, व श्वेतचन्द्रवेवाला हो।



२६ साधुओं के वस्त्र

१. तिहिं ठाणेंहि वत्थ धारेज्जा, त जहा—हिरिवत्तिय दुगु छावत्तिय परीसहवत्तिय। —स्थानांग ३।३।१७१

साधु को तीन कारणो से वस्त्र पहनने चाहिए—सयम लज्जा की रक्षा के लिए, लोगो की घृणा से बचने के लिए तथा शीत-उष्ण एव दश-मशकादि के परीषह से आत्मरक्षा करने के लिए।

२. कप्पइ निग्गथाण वा निग्गंथीण वा पच वत्थाइं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा, त० जगिए, भंगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए।

—स्थानांग ५।३।४४५

साधु-साध्वी पांच प्रकार के वस्त्र धार सकते हैं एव पहन सकते हैं—(१) ऊन के (कबलादि) (२) रेशम के (३) सण के (४) कपास के (५) तृण-घास व वृक्ष की छाल के।

३. साधु-साध्वियों को महामूल्य वस्त्र नही कल्पता।

—आचाराग श्रुत २ अ० ५ उ० १

४. साधु-साध्वियो को वस्त्र लेने के लिए अर्धयोजन से आगे जाना नही कल्पता।

—आचाराग श्रुत २ अ० ५ उ० १

५ कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीणं वा पच रयहरणाइ धारित्तए वा परिहरित्तए, वा ।

—स्थानांग ५।३।४४६

साधु-साध्विया पाच प्रकार के रजोहरण (ओघा) रख सकते हैं—ऊन के, ऊँट के लोम के, सण के, नरम घास के और कूटी हुई मूज के ।



साधुओं के पात्र

१. से भिक्खु वा भिक्खुणी वा अभिकखेज्जा पायं एसित्तए। सेज पुण पायं जाणेज्जा, त जहा—अलावुयपाय वा, दारुपायं वा मट्टियापाय वा . . अयपायाणि वा तउयपायाणि वा ... नो पडिग्गाहेज्जा।

—आचाराग श्रुत २ अ० ६ उ० १

साधु-साध्विया यदि पात्र की गवेषणा करनी चाहे तो वह तुबे के, काष्ठ के और मिट्टी के—ऐसे तीन प्रकार के पात्र ग्रहण करे। तथा लोह, तावा, सीसा, चादी, सोना, पत्थर, रत्न आदि के पात्र ग्रहण न करे।

२. अलावु-दारुपात्रं च, मृन्मयं वै दल तथा।
एतानि यतिपात्राणि, मनु स्वायभुवोऽब्रवीत्।

—मनुस्मृति ६।५४

स्वायभुव-मनु ने साधुओं के लिए निम्नलिखित पात्रों का विधान किया है—तुम्बी का पात्र, लकड़ी का पात्र, मिट्टी का पात्र और वृक्ष की छाल का पात्र।

३. परमद्धजोयण-मेराए पायपडियाए णो अभिधारेज्जा गमणाए। —आचारांग श्रुत २ अ० ६ उ. १

पात्र लेने के लिए साधु आधा योजन से आगे जाने की इच्छा न करे।

—मनुस्मृति ६।५३

४ तेषामद्भिः स्मृतं शौचम् ।

तुंबा आदि के पात्रो की शुद्धि जल से मानी गई है ।

५. सौवर्ण-मणिपात्रेषु, कांस्य-रौप्यायसेषु च ।
भिक्षा दद्यान्न सर्वज्ञो, ग्रहीता नरकं व्रजेत् ।।

—विष्णुपुराण खंड २ अ० १३२

सोना, रत्न, कांसी, चांदी और लोहे के पात्रो मे साधु को भिक्षा नही देनी चाहिए—इन पात्रो मे भिक्षा लेनेवाला नरक मे जाता है ।



३१ साधुओं का विहार

१ वहता पाणी निरमला, पडा गँधीला होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय॥

—राजस्थानी दोहा

२. ए रोलिंग स्टोन गेदर्स नो मोस। —अंग्रेजी कहावत

• वरे सगे गर्दा नरोयद नवात। —पारसी कहावत

रमता राम साधु बदनाम नहीं होता।

३ ग्रीष्म-हेमन्तकान् मासा-नष्टौ प्रायेण पर्यटेत्।
दयार्थं सर्वभूताना, वर्षास्वेकत्र सवसेत्॥

—मनुस्मृति

गर्मी-सर्दी के आठ महीनो में साधु प्राय. पर्यटन करे एव जीवों की दया के लिए वर्षा-ऋतु मे एक ही स्थान पर रहे।

४. अष्टौ मासा विहारस्य, यतीना सयतात्मनाम्।
एकत्र चतुरोमासान्, वार्षिकान्निवसेत् पुन.॥

—मत्स्यपुराण

सयमी साधुओं के लिए आठ महीने विहार के हैं एव वर्षाऋतु के चार महीने एक स्थान मे निवास करने योग्य हैं अत उस समय उन्हें एक ही स्थान मे रहना चाहिए।

५. जीवमालाकुले लोके, वर्षास्वेकत्र सवसेत्।

—अत्रिस्मृति

वर्षा-ऋतु मे पृथ्वी नाना प्रकार के जीवों मे परिपूर्ण हो जाती अत साधु उस समय एक जगह ही रहें।

६ नोकप्पइ निग्गयाण वा निग्गथीणं वा।
वासावासासु चरित्तए।

—आचाराग श्रुत २ अ० ३ उ० १

साधु-साध्वी को वर्षा-ऋतु मे विहार करना नहीं कल्पता। विशेष कारणों की स्थिति मे कर भी सकते हैं। वे कारण निम्नलिखित हैं—

७. असिवे ओमोयरिए, रायदुट्ठे भए व गेलन्ने।
आवाहादिएसु व, पचसु ठाणेसु रीएज्जा॥

—अभिधान राजेन्द्रकोष भाग ६, पृष्ठ १२६०

(१) शत्रु राजा का उपद्रव होने पर, (२) आहार न मिलने पर (३) राजा का द्वेष होने पर, (४) चोर आदि के भय से, (५) ग्लान साधु-साध्वी की सेवा करने के लिए—इन पांच कारणों से साधुवर्षा ऋतु मे विहार कर सकता है।

८. नो कप्पइ निग्गयाण वा निग्गथीण वा पढमपाउसंसि गामाणुगाम दुइज्जित्ताए। पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, त० णाणट्ठयाए, दसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, आयरिय-उवज्झाए वा से विसु भेज्जा, आयरिय-उवज्झायाण वा वहिया वेयावच्चकरणयाए। —स्थानांग ५।२।४१२

साधु-साध्वी प्रथम वर्षाकाल मे एक गाँव से दूसरे गाँव को विहार नहीं कर सकते, किन्तु पांच कारणो से विहार कर

सकते है—ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए, चारित्र के लिए, आचार्य-उपाध्याय के मरणासन्न होने पर तथा रोग आदि की परिस्थिति मे उनकी सेवा करने के लिए।

९. जहाँ स्वाध्याय-भूमि एव स्थडिल-भूमि आदि शुद्ध न हो, वहाँ साधु चातुर्मास न करे।

—आचाराग श्रुत अ० ३ उ-१



साधु की भाषा

१ चउण्हं खलु भासाणं, परिसंखाय पण्णवं ।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे, दो न भासिज्ज सव्वसो ॥१॥

बुद्धिमान मुनि सत्य,असत्य,मिश्र, व्यवहार—इन चारों भाषाओं को जानकर दो—सत्य एवं व्यवहार द्वारा तो विनय सीखे किन्तु असत्य और मिश्र—ये दोनों भाषाएँ सर्वथा न बोले ।

२. असच्चमोसं सच्चं च, अणवज्जमकक्कसं ।
समुप्पेहमसंदिद्धं, गिरं भासिज्ज पण्णवं ॥३॥

प्रज्ञावान् मुनि व्यवहार एवं सत्य भाषा भी निरवद्य, कोमल एवं संदेह रहित हो, वही सोच-विचार कर बोले ।

३ तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सइ ।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सइ ॥ ॥

हम जाएँगे, हम बोलेंगे हमारा अमुक कार्य हो जायेगा, मैं यह करूँगा, यह व्यक्ति यह काम करेगा—इस प्रकार निश्चय-कारिणी भाषाएँ साधु न बोले ।

४ जमट्ठं तु न जाणिज्जा, एवमेयं ति नो वए ॥८॥

भूत-भविष्यत् एवं वर्तमान काल-सम्बन्धी जिस अर्थ को न जानता हो, उसे वह 'इस प्रकार ही है,' ऐसा न कहे ।

५. जत्थ संका भवे तं तु, एवमेयं ति नो वए ॥६॥

भूत-भविष्यत् एव वर्तमानकाल-सम्बन्धी जिस विषय मे शका हो जाये, उसे 'ऐसा ही है' ऐसा न कहे ।

६. सच्चा वि स न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥११॥

जिस से पाप लगता हो, ऐसी सत्यभाषा भी नही बोलनी चाहिए ।

७. तहेव काण काणत्ति, पडग पडगे त्ति वा ।

वाहियं वावि रोगित्ति, तेण चोरे त्ति नो वए ॥१२॥

इसी प्रकार काने को काना, नपुसक को नपुसक, रोगी को रोगी एव चोर को चोर नही कहना चाहिए क्योंकि इस से सुननेवाले को दुःख होता है ।

८. अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउस्सियत्ति य ।

पिउस्सिए भाइणेज्जत्ति, धूए णत्तुणिअत्ति य ॥

हे दादी ! हे नानी ! हे परदादी ! हे परनानी ! हे माँ ! हे मौसी ! हे बुआ ! हे भानजी ! हे पुत्री ! हे पोती । (स्त्रियो को इस प्रकार सासारिक नामो से आमन्त्रित न करे, किन्तु उनके नाम-गोत्रादिक से बुलावे ।) इसी प्रकार पुरुषो को दादा ! नाना आदि नाम से न बुलावे ।

९. पंचिदिआण पाणाण, एस इत्थी अय पुम ।

जाव ण न वियाणिज्जा, ताव जाउत्ति आलवे ॥२१॥

पञ्चेन्द्रिय जीवो के बारे मे—यह स्त्री है—यह पुरुष है—ऐसे जहाँ तक न जान लिया जाये, वहाँ तक यह कुत्ते की जाति है, गाय की जाति है—ऐसे जाति शब्द का प्रयोग करना चाहिए ।

१०. सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे ।

सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्ज वज्जए मुणी ॥४१॥

भोजनादि अच्छा बनाया, घेवर अच्छा पकाया, शाक आदि अच्छा छेदा, करेला आदि की कडवास का अच्छा हरण किया, सत्तु आदि मे घी अच्छा भरा, बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ तथा चावल आदि बहुत इष्ट हैं, मुनि ऐसी सावद्यभाषा न बोले।

११. सुक्कीय वा सुविक्कीय, अकिज्ज किज्जमेव वा।
इम गिण्ह इम मु च, पणीय नो वियागरे ॥४५॥

यह माल अच्छा (सस्ता) खरीदा, यह अच्छा (नफे मे) बेचा, यह बेचने योग्य है। इस माल को ले लो (महगा होनेवाला है) और इसको बेच डालो (सस्ता हो जायेगा) पण्याणे के बारे मे साधु इस प्रकार न बोले।

१२. देवाण मणुयाण च, तिरियाण च वुग्गहे।
अमुयाण जओ होउ, मा वा होउत्ति नो वए ॥५०॥

देवो, मनुष्यो एव तिर्यञ्चो (पशु-पक्षियो) का आपस मे विग्रह होने पर 'अमुक विजयी हो, अमुक की विजय न हो'—ऐसा वचन साधु न बोले।

१३. वाओ वुट्ठ च सीउण्हं, खेम धाय सिवत्ति वा।
कयाणु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

वायु, बरसात, सर्दी-गर्मी, क्षेम (शत्रुसेना के उपद्रव की शान्ति) सुभिक्ष शिव (महामारी रोग आदि की शान्ति)—ये सब होंगे अर्थात् जल्दी हो तो ठीक अथवा ये सब न हो तो ठीक। ऐसा वचन साधु न बोले।

१४. तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा,

भूत-भविष्यत् एव वर्तमानकाल-सम्बन्धी जिस विषय मे शका हो जाये, उसे 'ऐसा ही है' ऐसा न कहे ।

६. सच्चा वि स न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥११॥

जिस से पाप लगता हो, ऐसी सत्यभाषा भी नही बोलनी चाहिए ।

७. तहेव काण काणत्ति, पडग पडगे त्ति वा ।
वाहिय वावि रोगित्ति, तेण चोरे त्ति नो वए ॥१२॥

इसी प्रकार काने को काना, नपु सक को नपु सक, रोगी को रोगी एव चोर को चोर नही कहना चाहिए क्योकि इस से सुननेवाले को दु ख होता है ।

८ अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउस्सियत्ति य ।
पिउस्सिए भाइणेज्जत्ति, धूए णत्तुणिअत्ति य ॥

हे दादी ! हे नानी ! हे परदादी ! हे परनानी ! हे माँ ! हे मौसी ! हे बुआ ! हे भानजी ! हे पुत्री ! हे पोती । (स्त्रियो को इस प्रकार सासारिक नामो से आमन्त्रित न करे, किन्तु उनके नाम-गोत्रादिक से बुलावे ।) इसी प्रकार पुरुषो को दादा ! नाना आदि नाम से न बुलावे ।

९. पंचिदिआण पाणाण, एस इत्थी अय पुम ।
जाव ण न वियाणिज्जा, ताव जाइत्ति आलवे ॥२१॥

पञ्चेन्द्रिय जीवो के बारे मे—यह स्त्री है—यह पुरुष है—ऐसे जहाँ तक न जान लिया जावे, वहा तक यह कुत्ते की जाति है, गाय की जाति है—ऐसे जाति शब्द का प्रयोग करना चाहिए ।

१०. सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे ।
सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी ॥४१॥

भोजनादि अच्छा बनाया, घेवर अच्छा पकाया, शाक आदि अच्छा छेदा, करेला आदि की कडवास का अच्छा हरण किया, सत्तु आदि मे घी अच्छा भरा, बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ तथा चावल आदि बहुत इष्ट हैं, मुनि ऐसी सावद्यभाषा न बोले।

११. सुक्कीय वा सुविक्कीय, अकिज्ज किज्जमेव वा।
इमं गिण्ह इमं मुंच, पणीय नो वियागरे ॥४५॥

यह माल अच्छा (सस्ता) खरीदा, यह अच्छा (नफे से) वेचा, यह वेचने योग्य है। इस माल को ले लो (महगा होनेवाला है) और इसको वेच डालो (सस्ता हो जायेगा) क्याणे के बारे मे साधु इस प्रकार न बोले।

१२. देवाण मणुयाण च, तिरियाण च वुग्गहे।
अमुयाण जओ होउ, मा वा होउत्ति नो वए ॥५०॥

देवो, मनुष्यो एव तिर्यञ्चो (पशु-पक्षियो) का आपस मे विग्रह होने पर 'अमुक विजयी हो, अमुक की विजय न हो'—ऐसा वचन साधु न बोले।

१३ वाओ वुट्ठ च सीउण्ह, खेम धाय सिवत्ति वा।
कयाणु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

वायु, वरसात, सर्दी-गर्मी, क्षेम (शत्रुसेना के उपद्रव की शान्ति) सुभिक्ष शिव (मरी रोग आदि की शान्ति)—ये कब होंगे अर्थात् जल्दी हों तो ठीक अथवा ये सब न हो तो ठीक। ऐसा वचन साधु न बोले।

से कोह-लोह-भय-हास-माणवो,
न हासमाणे वि गिर वइज्जा ॥५४॥

—दशवैकालिक अध्ययन ७

उसी प्रकार सावद्य का अनुमोदन करनेवाली संदेह-युक्त अर्थवाली, जीवोपघात करनेवाली—ऐसी भाषा साधु क्रोध, लोभ भयवश अथवा दूसरों का हास्य करता हुआ भी न बोले।

१५. ण लविज्ज पुट्ठो सावज्जं-ण णिरट्ठं ण मम्मयं ।

—उत्तराध्ययन १।२५

साधु पूछने पर भी सावद्य निरर्थक वचन न बोले।

१६. नक्खत्तं सुमिणं जोगं, निमित्तं मंत-भेसजं ।
गिहिणो तं न आइक्खे, भूयाहिगरणं पयं ॥

—दशवैकालिक ८।५१

नक्षत्र, स्वप्नफल, वशीकरणादि योग निमित्त, मन्त्र और भेषज ये जीवहिंसा के अधिकरण हैं। अतः साधु इन सबका फलाफल गृहस्थ को न बताए।

१७. तुमं तुमंति अमणुन्नं, सव्वसो तं न वत्तए ।

—सूत्रकृतांग १।६।२७

'तू-तू'—जैसे अभद्र शब्द कभी नहीं बोलने चाहिए।

१८. नो वयणं फरुसं वइज्जा । —आचारांग २।१।१६

कठोर-कटु-वचन न बोले।

१९. अणुचिंतिय वियागरे । —सूत्रकृतांग २।६।२५

जो कुछ बोले—पहले विचार कर बोले।

२० जं छन्नं तं न वत्तव्वं । —सूत्रकृतांग १।६।२६

किसी की कोई गोपनीय जैसी बात हो, तो वह नहीं कहनी चाहिए।

नो तुच्छए नो य विकत्थइज्जा ।
—सूत्रकृतांग १।१४।२१

साधक न किसी को तुच्छ (हलका) बताए और न किसी की झूठी प्रशंसा करे ।

२२ निरुद्धग वावि न दीहइज्जा ।
—सूत्रकृतांग १।१४।२३

थोड़े मे मे कही जानेवाली बात को व्यर्थ ही लम्बी न करे ।

२३ नाइवेल वएज्जा ।
—सूत्रकृतांग १।१४।२५

साधक आवश्यकता से अधिक न बोले ।

२४ नो छायए नो वि य लूसएज्जा ।
—सूत्रकृतांग १।१४।१६

उपदेशक सत्य को कभी छिपाए नही, और न ही उसे तोड़-मरोड़ कर उपस्थित करे ।

✕

३३ साधुओं के लिए कल्प-अकल्प

१. यज्ज्ञानशीलतपसा - मुपग्रहं च दोषाणाम्।
कल्पयति निश्चयेन, यत्तत्कल्प्यमकल्प्मवशेषम् ॥१४३॥
यत्पुनरुपघातकरं, सम्यक्त्वज्ञानशीलयोगानाम्।
तत्कल्प्यमप्यकल्प्य, प्रवचनकुत्साकरं यच्च ॥१४४॥
किंचिच्छुद्धं कल्प्य, मकल्प्य स्यादकल्प्यमपि कल्प्यम्।
पिण्ड. शय्या वस्त्रं, पात्र वा भेपजाद्य वा ॥१४५॥
देश कालं पुरुष-मवस्थानुपयोगशुद्धिपरिणामान्।
प्रसमीक्ष्य भवति कल्प्य, नैकान्तात्कल्पते कल्प्यम् ॥१४६॥
तच्चिन्त्य तद्भाष्य, तत्कार्य भवति सर्वथा यतिना।
नात्मपरोभयबाधक-मिह यत्परतश्च सर्वाद्धम् ॥१४७॥
—प्रशमरति

जो ज्ञान, शील एवं तप को पुष्ट करता हुआ दोषों का निग्रह करता है, निश्चय-दृष्टि से साधु के लिए वही कार्य कल्प्य (करने योग्य) है, शेष अकल्प्य है ॥ १४३ ॥

जो सम्यक्त्व, ज्ञान, शील एवं योग का नाश करता है और वीतरागवाणी की निन्दा करनेवाला है, वह कार्य कल्प्य होने पर भी अकल्पनीय है ॥ १४४ ॥

आहार-शय्या-वस्त्र-पात्र-औषधि आदि द्रव्य भी देश, काल, पुरुष, अवस्था, उपयोग, शुद्धि और परिणाम की अपेक्षा से ही कल्प के योग्य होते हैं, एकान्तरूप से नहीं ॥१४५-१४६॥

साधु को वही सोचना चाहिए, वही बोलना चाहिए और वही काम करना चाहिए, जो इहलोक-परलोक में सदा स्व-पर-उभय बाधक न हो। ॥ १४७ ॥

२. आचेलक्कुद्देसिय, सिज्जायर-रायपिंड-किडकम्मे।
वयजेट्ठ-पडिक्कमणे, मास - पज्जोसवण - कप्पो॥

—पंचास्तिकाय-विवरण १७ गाथा, ८-१०

शास्त्रोक्त आचार एवं अनुष्ठानविशेष का नाम कल्प है। कल्प दस माने गए हैं—१ अचेलक, २ औद्देशिक, ३ शय्यातरपिण्ड, ४ राजपिण्ड, ५ कृतिकर्म, ६ व्रतकल्प, ७ ज्येष्ठकल्प ८ प्रतिक्रमणकल्प, ९ मासकल्प, १० पर्युषणकल्प, इन दसों कल्पों को निश्चितरूप से पालनेवाले साधु स्थितकल्पिक कहलाते हैं। ये प्रथम-अन्तिम तीर्थंकरों के समय में होते हैं। १ शय्यातर-पिण्ड, २ कृतिकर्म, ३ व्रत, ४ ज्येष्ठ—इन चार कल्पों को नियमितरूप से और शेष छह को यथासम्भव पालनेवाले साधु अस्थितकल्पिक कहलाते हैं—ये महाविदेहक्षेत्र में तथा बाईस तीर्थंकरों के समय भरत-ऐरावत क्षेत्रों में होते हैं।

३ छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता, तं जहा—कुक्कुइए संजमस्स पलिमंथू १, मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू २, चक्खु-लोलए इरियावहियस्स पलिमंथू ३, तितिणए एसणा-गोयरस्स पलिमंथू ४, इच्छालोलए मुत्तिमग्गस्स पलिमंथू ५, भुज्जो-भुज्जो नियाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू ६, सव्वत्थ भगवया अनियाणया पसत्था।

—बृहत्कल्प ६।१२ तथा स्थानांग ६।५२९

साधु के आचार का मन्थन करनेवाले साधु पलिमंथु कहलाते हैं। इनके छह भेद हैं—१ कौत्कुचिक, २ मौखरिक, ३ चक्षुर्लोल, ४ तिंतिणिक, ५ इच्छालोभिक, ६ निदानकर्ता।

(१) कौकुचिक—(शरीर,स्थान एवं भाषा द्वारा कुचेष्टा करनेवाला) साधु संयम का पलिमन्थु होता है।

(२) मौखरिक—(वाचाल एवं कटुभाषी) साधु सत्यवचन का पलिमन्थु होता है।

(३) चक्षुलोलुप—(चलते समय इधर-उधर देखनेवाला, स्वाध्याय या चिन्तन करनेवाला) साधु ईर्यासमिति का पलिमन्थु होता है।

(४) तिंतिणिक—(यथेष्ट आहारादि न मिलने पर टनटनाट करनेवाला) साधु एपणासमिति का पलिमन्थु होता है।

(५) इच्छालोभिक—(लोभवश वस्त्र-पात्रादि का संग्रह करनेवाला) निर्लोभितारूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु होता है।

(६) निदानकर्ता—(चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि का निदान करनेवाला) साधु सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु होता है।

●

साधुओं के सुख

१. एगमास परियाए समणे निग्गथे वाणमंतराण देवाण तेयलेस्स वीइवयइ ··· ···· ··· वारसमासपरियाए समणे निग्गंथे अणुत्तरोवाइयाण देवाण तेयलेस्स वीइवयई।

—भगवती १४।६

एक मास का दीक्षित साधु व्यन्तर देवों के सुखों का व्यतिक्रमण करता है अर्थात् उन से अधिक सुखी होता है। दो मास का दीक्षित असुरेन्द्रवर्जित-भवनपतिदेवों के सुखों का, तीन मास का दीक्षित असुरकुमारदेवों के सुखों का, चार मास का दीक्षित ग्रह-नक्षत्र-ताराओं के सुखों का, पांच मास का दीक्षित चन्द्र-सूर्य के सुखों का, छ मास का दीक्षित प्रथम स्वर्ग के सुखों का, सात मास का दीक्षित तीसरे-चौथे स्वर्ग के सुखों का, आठ मास का दीक्षित पांचवें-छठे स्वर्ग के सुखों का, नवमास का दीक्षित सातवें-आठवें स्वर्ग के सुखों का, दस मास का दीक्षित ग्यारहवें-बारहवें स्वर्ग के सुखों का, ग्यारहमास का दीक्षित ग्रैवेयक (१३ से २१ वें स्वर्ग तक) देवों के सुखों का और बारहमास का दीक्षित साधु अनुत्तरविमान—(२२ से २६ वें स्वर्ग तक) निवासी देवों के सुखों का व्यतिक्रमण करता है।

२. साधु के लिए चार सुखशय्याएँ कही हैं—(१) शुद्धसयम पालना, (२) दूसरे की लब्धि का न लेना, (३) काम-भोग का सर्वथा स्वाद न लेना, (४) वेदना को समभाव से सहना।

—स्थानांग ४।३।३२५

३. सन्यासी ने गरीब ब्राह्मण को पारस दिया। विस्मित लोगो ने पूछा, यह अमूल्य चीज आपने इसे कैसे दे दी? ऋषि ने कहा—यह तो पारस (पावरस) है, मेरे पास तो साधुत्व का पूरा रस है।

साधुओं के बारह संभोग और उनका विच्छेद

दुवालसविहे संभोगे पण्णत्ते, तं जहा—
उवही-सुय-भत्तपाणे, अंजलीपग्गहे त्ति य।
दायणे य निकाय य, अब्भुट्ठाणेत्ति आवरे ?
किइकम्मस्स करणे, वेयावच्चकरणे इय ?
समोसरण सन्निसिज्जा य, कहाए य पबंधणे ?

—समवायाङ्ग १२

साधुओं के सम्मिलित आहार आदि व्यवहार को संभोग कहते हैं। बारह प्रकार के संभोग कहे हैं—१. उपधि-वस्त्र-पात्रादि साथ लेना, २. विधियुक्त सूत्र पढ़ना-पढ़ाना, ३. आहार-पानी साथ लेना, ४. हाथ जोड़ना, ५. अपने वस्त्रादि देना, ६. शय्या आदि का निमन्त्रण देना, ७. आने पर खड़ा होना, ८. वन्दना करना, ९. सेवा करना, १०. समवसरण-पर साथ रहना, ११. एक आसन पर साथ बैठना, १२. विधियुक्त सब प्रकार की कथा करना। पूर्वोक्त सर्व सांभोगिक साधु के साथ ही किए जा सकते हैं।

२ तिहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे साहम्मियं संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—सयं वा दिट्ठ, सड्ढस्स वा निसम्म, तच्चं मोसं आउट्टइ, चउत्थं नो आउट्टइ।

—स्थानांग ३।२

तीन कारणों से साधु सांभोगी साधर्मिक को विसंभोगी करता हुआ प्रभु-आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। यथा—स्वयं दोष देखकर, विश्वासी साधु से सुनकर और तीसरी बार झूठ बोलने पर।

३६ साधुओं को शिक्षा

१. मग्ग कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियंठाण वए पहेणं ।

—उत्तराध्ययन २०।५१

मुमुक्षु को कुशीलपुरुषो के मार्ग को छोडकर महानिर्ग्रन्थो के मार्ग पर चलना चाहिए ।

२. एगओ निव्वत्ति कुज्जा, एगओ य पवत्तण ।

—ऋषिभाषित १७

साधक को चाहिए कि वह एक (असुभयोग) मे निवृत्ति करे एव एक (शुभयोग) मे प्रवृत्ति करे ।

३ पहाय रांग च तहेव दोसं,मोह च भिक्खु सयय वियक्खणो ।
मेरुव्व वाएण अकपमाणो, परीसहे आयगुत्ते महिज्जा ।

—उत्तराध्ययन २१।२६

विचक्षण एव आत्मगुप्त साधु को राग, द्वेष एव मोह को त्याग कर वायु से अकम्पित मेरु की तरह अडोल बनकर परिषहों को सहन करना चाहिए ।

४ तिहि ठाणेहि समणे णिग्गथे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ,त०कयाण अह अप्प वा बहु वा सुय अहिज्जिस्सामि । कया णं अह एकल्लविहारपडिम उवसपज्जित्ताण विहरिस्सामि । कयाण अह अपच्छिममारणतियसंलेहणा झूसणा झूसिए भत्त-पाणपडियाइक्खिए पादओवगए

कालमणवकखमाणे विहरिस्सामि । एव समणसा सवयसा सकायसा, पगडेमाणे निग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ।

—स्थानांग ३।४।२१०

तीन मनोरथों का चिन्तन करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा-महापर्यवसान करता है । यथा—कब मैं थोड़ा-बहुत श्रुत (ज्ञान) पढ़ूं ? कब मैं एकलविहारी की प्रतिमा स्वीकार कर विचरूं ? तथा कब मैं मारणान्तिक संलेखना-संथारा करके मरणकाल की इच्छा न करता हुआ स्थिरतापूर्वक विहार करूं ?



नामधारी साधु

१ छती ऋद्धि तज निकले, धरे वैराग विशेप।
जोग तिका ही पालसी, अन्तर ऊँडो देख ॥ १ ॥
काल-दुकाले वेचिया-भूख भखा लै भेख।
तिके जोग किम पालसी, अन्तर ऊडो देख ॥ २ ॥

२. खावण मिलगई खीचडी,ओढण मिलगई सोड।
चेलो पूछे गुराजो ने, मोख आही के और ॥

३ साध-साध कहावे सहु, ज्यां घर बेटा ज्या घर बहू।
ज्या घर ढाढा ज्यां घर ढोर, वै ही बोलावा वै ही चोर ॥

४. भेख लियो जग देखन कू पर,
भेख की टेक सकै नहि पाली।
किसी का रमावत छोकरा-छोकरी,
किसी का चरावत केरडा-छाल्लो।
जान-बरात मे सग चले जब,
भात मे खात मगन की गाली।
नरसिंह के द्वारे पे बाबो रह्यो,
पर, बाबो को बाबो न हाली को हाली।

—मापारसोकसागर

५. मुनि मौन फारसी भणे, हुकारे खटकाया हणे।
अणबोल्या ही उद्यम करे, बोल्या तो वै जुल्म करे।

६ वहन न मागै कापडो, डाण न मागे राज ।
झोली टक्का स्यूं भरी, लोक कहे महराज ।

७ साधा रै किसा सवाद, विलोया नहीं तो अण विलोया ही सही । —राजस्थानी कहावत

८ सच्चे संत असली शीशे के समान आत्मिकरूप दिखाकर कल्याण कर देते है और ढोंगी साधु नाई की तरह नकली शीशा दिखाकर हजामत कर देते है ।

९ एक योगी योगविद्या से पानी पर चल कर आया । लोगों ने पूजा की । ज्ञानी-भक्त ने कहा—महाराज ! १२ वर्ष में आप ने सिर्फ दो आने की कमाई की है । नाववाला नदी पार करने का दो आना किराया लेता है ।

१०. बुढ़िया के घर में बिल्ली मर गई । टोकरी मे रखकर चुपके से डालने गई । पीछे से एक बीमार ऊंट घर में आ घुसा एवं मर कर गिर पड़ा । इसी प्रकार गृहस्थाश्रम मे धन-संपत्ति आदि का बिल्ली जितना अभिमान है, उसे छोड़ने के लिए साधु बने, किंतु यहां ऊट जितना ज्ञानादि का अभिमान आ गया । अब उसे किधर डाला जाए ?

पापी साधु

१. संथार फलगं पीढ, निसिज्जं पायकंबलं।
अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥७॥

संस्तारक, फलक, आसन, निषद्या-स्वाध्यायभूमि आदि और पादपुञ्छन—इन सब पर जो विना प्रमार्जन किए बैठता है, वह पापीसाधु कहलाता है।

पडिलेहइ पमत्ते, अवउज्झइ पायकंबलं।
पडिलेहणाअणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥९॥

जो वेपरवाही से पडिलेहन करता है, पाद-कंबल को कहीं-कहीं रख देता है एवं पडिलेहन में वेपरवाह रहता है, वह पापी-साधु कहलाता है।

बहुमाई पमुहरी, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥११॥

जो छल करनेवाला है, विना विचारे बोलनेवाला है, अहंकारी है, लोभी है, इन्द्रियों को वश में न रखनेवाला है, समविभाग न करनेवाला है एवं अप्रीतिकारी-क्रोधी है, वह पापीसाधु कहलाता है।

दुद्धदहीविगईओ, आहारेइ अभिक्खणं।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१५॥

—उत्तराध्ययन अध्ययन १७

जो दूध-दहीरूप विगय बार-बार खाता है एव तपस्या मे अरुचि रखता है, वह पापीसाधु कहलाता है।

२ जो पव्वइत्ताण महव्वयाइ,
सम्म च नो फासयई पमाया।
अणिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
न मूलओ छिदइ बधण से। ३९॥

जो साधु बनकर महाव्रतो को अच्छी तरह नही पालता, इन्द्रियो को वश नहीं करता तथा रसो मे गृद्ध रहता है, वह मूल से कर्म बन्धनो को नही छेद सकता।

आउत्तया जस्स न अत्थि कावि,
इरियाइ भासाइ तहेसणाए।
आयाणनिक्खेव-दुगछणाए,
न वीरजाय अणुजाइ मग्ग॥४०॥

जिसकी ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्गसमिति मे किञ्चित् मात्र यतना नही है, वह मुनि वीरमार्ग का अनुसरण नही कर सकता।

पुल्ले व मुट्ठी जह से असारे,
अयतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे,
अमहग्घए होइ य जाणएसु॥४२॥

[illegible]

जे लक्खण सुविण पउंजमाणे,
निमित्त - कोऊहलसपगाढे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवी,
न गच्छइ सरण तमि काले ॥४५॥

जो साधु लक्षण और स्वप्नो का शुभाशुभ फल बताता है, निमित्त-भूकपादि द्वारा भविष्य कहता है कौतूहल-मनान के लिए अभिमन्त्रित जल से स्नान करवाता है, तथा इन असत्य एव आश्चर्यकारिणी विद्याओ से अथवा हिंसादि आश्रवो से अपना जीवन बिताता है, वह कर्म भोगने के समय किसी भी शरण को प्राप्त नही होता ।

उद्देसियं कीयगड नियाग,
न मुचइ किंचि अणेसणिज्ज ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,
इहो चुओ गच्छइ कट्टु पाव ॥४७॥

—उत्तराध्ययन २०

जो साधु औद्देशिक, क्रीतकृत, नियतपिण्ड और अनेषणीय किंचिन्मात्र भी पदार्थ नही छोडता, वह अग्निवत् सर्वभक्षी होकर पापकर्म करके नरकादि गतियो मे जाता है ।

३६ कंदर्पादि में लीन साधुओं की गति

१ कदप्प-कुक्कुयाइ, तह सील-सहाव-हास विगहाहि ।
विम्हावेंतो य पर, कदप्पभावण कुणइ ॥२६४॥

जो साधु कंदर्प-कामकथा कौत्कुच्य—भावभंगी और वाग्-विन्यास द्वारा हास्य उत्पन्न करता है तथा शील-[illegible] चेष्टा, स्वभाव, हास्य और विकथाओं द्वारा दूसरों को विस्मित करता है, वह कांदर्पी-भावना का आचरण करता है अर्थात् मरकर कांदर्पी देवता (स्वर्ग का भांड) होता है।

२. मंता जोग काउ, भूईकम्म च जे पउंजंति ।
साय-रस-इड्ढिहेउ, अभिओग भावण कुणइ ॥२६५॥

जो साधु साता, रस और ऋद्धि के लिए मन्त्रयोग एवं भूति-कर्म (मन्त्रित भस्मादि का प्रयोग) करता है, वह आभियोगिक भावना का आचरण करता है यानी मरकर [illegible] देवता बनकर [illegible] करता है।

३ नाणस्स केवलीण, धम्मायरियस्स संघ-साहूण ।
माई अवण्णवाई, किब्बिसिय भावण कुणइ ॥२६६॥

जो मायावी साधु ज्ञान, केवलज्ञानी, धर्माचार्य, संघ और साधुओं की निन्दा करता है, वह किल्बिषी-भावना का आचरण करता है अर्थात् मरकर किल्बिषी देवता (अछूत [illegible] के [illegible]) बनता है।

४. अणुवद्धरोसपसरो, तह य निमित्त मि होइ पडिसेवी ।
एएहि कारणेहि, आसुरिय भावण कुणइ ॥२६७॥
— उत्तराध्ययन ३६

जो साधु निरन्तर रोष का प्रसार करता है एव निमित्त का सेवन करता है, वह आसुरी-भावना का आचरण करता है यानी मरकर असुरकुमार देवता बनता है। (यह वर्णन स्थानांग ४।४ मे भी है)

५. तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे।
आयार-भावतेणे य कुव्वइ देवकिव्विस ॥
—दशवैकालिक ५।२।४६

जो मुनि तपचोर, वचनचोर, रूपचोर, आचारचोर एव भाव का चोर है, वह किल्विषी देवता मे उत्पन्न होता है। जैसे-कोई पूछता है कि महाराज ! आप लोगो मे एक तपस्वी साधु सुने थे, क्या वे आप ही है ? ऐसे पूछने पर "साधु-तपस्वी होते ही हैं" इस प्रकार कपटपूर्ण उत्तर दे, वह तपचोर कहलाता है। ऐसे ही वचनचोर आदि भी समझ लेना चाहिए।

●

परिशिष्ट

अस्पृश्यता की खोज
भाग १ से ५ तक में
उद्धृत ग्रन्थों व व्यक्तियों की नामावली

१ ग्रन्थ सूची

अङ्गुत्तर निकाय
अंगिरास्मृति
अग्निपुराण
अथर्ववेद
अर्थशास्त्र
अध्यात्मसार
अध्यात्मोपनिषद्
अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका
अनुयोग द्वार
अपरोक्षानुभूति
अभिधम्मपिटक
अभिधानराजेन्द्र
अभिधानचिन्तामणि
अभिज्ञान शाकुन्तल
अमितिगति श्रावकाचार
अमृतध्वनि
अमर भारती (मासिक)
अवेस्ता
अत्रिस्मृति
अष्टांग हृदय-निदान
आगम और त्रिपिटक'एक अ
आचाराङ्ग सूत्र
आर्थिक व व्यापारिक भूगो
आप्त-मीमांसा
आत्मानुशासन
आवश्यकनिर्युक्ति
आवश्यक मलयगिरि
आवश्यक सूत्र
आत्म-पुराण
आत्मविकास
आतुर प्रत्याख्यान
आपस्तम्बस्मृति
आवा अद्वी गुरुग्रन्थ
औपपातिक सूत्र
इतिहास समुच्चय
ईशोपनिषद्
इस्लामधर्म
इष्टोपदेश
ईश्वरगीता
उत्तरराम चरित्र

उत्तराध्ययन सूत्र
उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति
उदान
उपदेश तरंगिणी
उपदेशप्रासाद
उपदेशमाला
उपदेशरत्नमाला
उपासक दशा
ऋग्वेद
ऋषिभाषित
ऐतरेय ब्राह्मण
कठोपनिषद्
कथासरित्सागर
कल्याण (मासिक)
कवितावली
कात्यायन स्मृति
किसन बावनी
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
कुरान शरीफ
[illegible]
कुवलयानन्द
[illegible]

केनोपनिषद्
कौटिलीय अर्थशास्त्र
खुले आकाश में
गच्छाचार प्रकीर्णक
गरुड़ पुराण
गृहस्थधर्म
गीता
गीता भाष्य
गुर्जरभजनपुष्पावली
गुजराती साहित्य
गोम्मटसार
गौतमस्मृति
गोरक्षा-शतक
घटचर्पटपंजरिका
चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र
चन्द्रचरित्र
चरक संहिता
चरित्र रक्षा
[illegible]
चाणक्यनीति
[illegible]
[illegible]
चीनी सुभाषित
छान्दोग्य उपनिषद्
जापानी साहित्य

जागृति (मासिक)
जातक
जाबालश्रुति
जाह्नवी
जीतकल्प
जीवन-लक्ष्य
जीवन सौरभ
जीवाभिगम सूत्र
जैनभारती
जैनसिद्धान्त दीपिका
जैनसिद्धान्त बोलसंग्रह
टॉड राजस्थान इतिहास
टी वी हैण्डबुक
डिकेन्स
डेलीमिरर
तत्त्वामृत
तत्त्वार्थ-सूत्र
तन्दुलवैचारिकगाथा
तत्त्वानुशासन
ताओ-उपनिषद्
ताओ-तेह्-किंग
तात्त्विक त्रिशती
तिरुकुरल
तीन बात
तैत्तिरीय उपनिषद्
दशाश्रुत-स्कन्ध
दशाश्रुत-स्कन्धवृत्ति
दक्षसंहिता
दर्शनपाहुड
दान-चन्द्रिका
दिगम्बर प्रतिक्रमण त्रयी
दीर्घनिकाय
दोहा-संदोह
द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका
द्रव्य-संग्रह
धन-बावनी
ध्यानाष्टक
धम्मपद
धर्मबिन्दु
धर्मयुग
धर्मसंग्रह
धर्मरत्न प्रकरण
धर्मशास्त्र का इतिहास
धर्मों की फुलवारी
तैत्तिरीय ताण्ड्य महाब्राह्मण
तोरा
थेरगाथा
दशवैकालिक सूत्र
दर्शन-शुद्धि
धर्म-सूत्र

न्याय दीप
नन्दी सूत्र
नर्मदा
नचिकेत
नवभारत टाइम्स (दैनिक)
नवनीत (मासिक)
नवीन राष्ट्र एटलस
नारद पुराण
नारद नीति
नारद परिव्राजकोपनिषद्
निर्णयसिन्धु
नियमसार
निरुक्त
निशीथ चूर्णि
निशीथ भाष्य
निरालम्बोपनिषद्
नीतिवाक्यामृत
नैषधीय चरित
पराशर
पञ्चास्तिकाय
पञ्चाध्यायी
पद्मपुराण
[illegible]
[illegible]
पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका
प्रवचन सार
प्रवचन सारोद्धार
प्रवचन डायरी
प्रश्नव्याकरण सूत्र
प्रशमरति
प्रज्ञापना सूत्र
पातञ्जल योगदर्शन
पाराशर स्मृति
प्रास्ताविक श्लोकशतकम्
पुरानी बाइबिल
पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
पुराण
पूर्व मीमांसा
बृहत्कल्प भाष्य
ब्रह्मग्रन्थावली
ब्रह्मानन्द गीता
बृहदारण्यकोपनिषद्
बृहस्पतिस्मृति
बाइबिल
बुखारी
[illegible]
बुद्ध-चरित
[illegible]
[illegible]
[illegible]

भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक
भक्ति-सूत्र
भगवती-सूत्र
भर्तृहरि नीतिशतक
,, वैराग्य शतक
,, शृंगार शतक
भविष्य-पुराण
भावप्रकाश
भाषा श्लोकसागर
भामिनीविलास
भाल्लवीय श्रुति
भूदान पत्रिका
भोजप्रबन्ध
मज्झिमनिकाय
मन्थन
महाभारत
महानिद्देस पालि
महानिशीथ भाष्य
महानिर्वाण तन्त्र
मनुस्मृति
मनोनुशासनम्
मत्स्यपुराण
महाप्रत्याख्यान
मनन
मिलाप
मुण्डकोपनिषद्
मुस्लिम
मेडम द स्नाल
मेगजीन डाइजेस्ट
मोहमुद्गर
यश्न्
यश्त्
यशस्तिलकचम्पू
यजुर्वेद
याज्ञवल्क्य स्मृति
यूहन्ना
योगवाशिष्ठ
योगदृष्टि समुच्चय
योगशास्त्र
योगविन्दु
रघुवंश
रश्मिमाला
राजप्रश्नीय सूत्र
रामचरित मानस
राममतसई
रामायण
रीडर मेगजीन
लूका
व्यवहार चूलिका
व्यवहार-भाष्य

व्यवहार-सूत्र
व्यासस्मृति
व्यास-संहिता
बृहत्पाराशर संहिता
बृहद् द्रव्यसंग्रह
वाल्मीकि रामायण
वशिष्ठ-स्मृति
[illegible] (मासिक)
विवेकचूडामणि
विदुर नीति
विनयपिटक
विवेक विलास
विशेषावश्यक भाष्य
विशेषावश्यक चूर्णि
विश्वकोष
विज्ञान के नए आविष्कार
विशुद्धिमग्गो
विष्णुस्मृति
विश्वमित्र (दैनिक)
वीतराग स्तोत्र
वेदान्त सार
[illegible]
[illegible]
वैशेषिक दर्शन
वैदिक धर्म क्या कहता है ?
वैदिक-विचार विमर्शन
शतपथ ब्राह्मण
श्वेताश्वेतरोपनिषद्
शंकरप्रश्नोत्तरी
शंख स्मृति
शार्ङ्गधर
शान्त सुधारस
शान्तिगीता
श्राद्ध विधि
शास्त्रवार्तासमुच्चय
श्रावकप्रतिक्रमण
शिशुपालवध
शिवपुराण
शिव-संहिता
श्रीमद्भागवत
[illegible]
[illegible]
शुक्ल यजुर्वेद
षट्प्राभृत
स्कन्द पुराण
स्थानांग सूत्र
सभा तरंग
[illegible]
सर्वार्थसिद्धि
समयसार

समवायाग सूत्र
सम्बोधसत्तरि
सप्तव्यसन सन्धान काव्य
सरिता
सर्जना
सवैया शतक
स्वप्न शास्त्र
स्वर-साधना
समाधिशतक
सन्मति तर्कप्रकरण
स्टडीज इन डिसीट
सरल मनोविज्ञान
सयुत्तनिकाय
सामायिक सूत्र
सामवेद
सावधानी रो समुद्र
सिद्धान्त कौमुदी
सिन्दूर प्रकरण
सुखमणि सहिता
सुत्तनिपात
सुभापितावलि
सुभापितरत्न खण्ड-मजूपा
सुभाषित रत्नभाण्डागार
सुभापित संचय
सुत्तागुट
सुबोध पद्माकर
सुभापित रत्न सन्दोह
सुश्रुत शरीर-स्थान
सूत्रकृताग सूत्र
सूक्तरत्नावलि
सूक्तमुक्तावलि
सौर परिवार
हउश् मज्दा
हदीश शरीफ
हरिभद्रीयआवश्यक
हनुमान नाटक
हृदय प्रदीप
हृपिकेश
हितोपदेश
हिंगुलप्रकरण
हिन्दुस्तान (दैनिक व साप्ता। हि
हिन्दसमाचार
क्षेमेन्द्र
त्रिपष्टि शलाकापुरुप चरित्र
ज्ञाता-सूत्र
ज्ञानार्णव
ज्ञान-सार
ज्ञानप्रकाश

व्यक्ति-नामावली २

अफलातून
अबुमुर्ताज
अबीदाउद
अबूबकर कितानी
अ[illegible]
अरविन्द घोष
अरस्तू
आचार्य [illegible]
आचार्य श्रीतुलसी
आचार्य रजनीश
आगस्टिन
आरजू
आन्द्रे [illegible]
ओ[illegible] पास्कल
इपिक्टेटस
इब्राहिम लिंकन
इमा[illegible]
[illegible], मोर
[illegible]
[illegible]

एमर्सन
एडीसन
एरिक
एनाक्सीमेनर
एलोनियस
कविराज हरनामदास
कबीर
कन्फ्युसियस
कण्टोर सेट
कागावुत्सी
कार्लाइल
कार्ल मार्क्स
कामरेन
[illegible]
कान्फ्यूसियो
कुन्दकुन्दाचार्य
कूपर
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कैथरीन
कोल्टन
खलील जिब्रान
ख्यान कवि
गांधी
गिब्बन
गुरु गोरखनाथ
गुरु नानक
गेटे
गेथिन
गेलविन
गोल्डस्मिथ
गोर्की
गौतम बुद्ध
जगन्नाथ कवि
जयनन्द
जयशंकर प्रसाद
[illegible]
जवाहरलाल नेहरू
[illegible]

सत्यदेवनारायण सिन्हा	सुन्दरदास	ह्यू म
सन्त आगस्तीन	सूरत कवि	हाफिज
सत ज्ञानेश्वर	सूरदास	हावेल
सत तुकाराम	मेलहास्ट	हालीवर्टन
सन्त निहालसिंह	सैनेका	हार्टले
सद्गुरुचरण अवस्थी	सेमुअल जानसन	हे एन भाग
समर्थगुरु रामदास	सोमदेव सूरि	हेनरी वार्ड वीचर
सायरस	हजरत अली	हैजलिट
सिगुरिनी	हजरत मुहम्मद	हैली वर्टन
स्विट	हरिभद्र सूरि	होमर
सिसरो	हलवर्ट	होरेश वाल पोल
सुकरात	हयहया	ब्रायण्ट



लेखक की महत्वपूर्ण २

प्रकाशित

१.	एक आदर्श आत्मा	०-४०	हरखचन्द [illegible]
			मार्गीलाल [illegible]
			प्रकाशन (
२.	[illegible]	०-५०	[illegible]
			पो० [illegible]
३.	चरित्र-प्रकाश	२-५०	श्री जैन श्वे[illegible]
			[illegible] (
४	भजनों की भेंट	०-६०	,,
५.	लोक प्रकाश	१-२५	,,
६.	[illegible]	०-२०	आदर्श साहि[illegible]
			पो० [illegible] (
७.			